॥३॥ भृष्ट कुजीव उलूक पशूमम, तिनने नाहिं लखाया है। धन्य दिनेश 'जिनेश्वर' आनन, जिहँ प्रकाश वृष पाया है॥ श्रीमुख॥ ४॥

( २ )

प्रभाती हजूरी।

श्रीअरहत छबि लखि हिरदै आनंद अनूपम छाया है॥ टेर॥ वीतरागमुद्रा हितकारी, आसन पद्म लगाया है। दृष्टि नासिका अग्रधार मनु, ध्यान महान बढाया है। श्रीअरहत ॥ १ ॥ रूप सुधाधर अंजुलि भरि भरि, पीवत भवि सुख पाया है। तारन तरन जगतहितकारी, विरद शचीपति गाया है। श्रीअहरत ॥ ॥२॥ तुम मुख चंद्र नयनके मारग, हिरदै माहि समाया है। भ्रमतम दुख आतापन सो सब, सुख सागर बढि आया है। श्रीअहरत॥ ३॥ प्रघटी उरसंतोष चंद्रिका, निज स्वरूप दरसाया है। धन्य धन्य जिन छबी जिनेश्वर, देखत ही सुखपाया है। श्रीअहरत॥ ४॥

( ३ )

पुन० प्रभाती।

जयवंतो जिनबिंब जगतमें, जिन देखत निजपाया है। जयवंतो ॥ टेर ॥ वीतरागता लखि प्रभुजीकी, विषयदाह विनशाया है। प्रगट भयो संतोष महागुण, मन थिरतामें आया है। जयवंतो ॥ १ ॥ अतिशय ज्ञान शरासन पे धरि, शुक्ल ध्यान शर वाह्या है। हानि मोह अरि चंड चौकडी, वह स्वरूप दिखलाया है। जयवंतो ॥ २ ॥ वसुविधि अरि हरि करि शिव थानक, थिर स्वरूप ठहराया है, सो स्वरूप, शुचि स्वयं सिद्ध, प्रभु, ज्ञान रूप मन भाया है ॥ जयवंतो ॥३॥ यदपि अचेत तदपि चेतनको, चितस्वरूप दिखलाया है। कृत्याकृत्य 'जिनेश्वर' प्रतिमा, पूजनीय गुरु गाया है ॥ जयवंतो ॥ ४ ॥

( ४ )

कैसी छवि सोहै मानो सांचेमें ढारी, कैसी

छवि सोहै मानो सांचेमैं ढारी। सांचेमें ढारी स्वामी सांचेमैं ढारी, कैसी छवि सोहै मानो सांचेमैं ढारी ॥ टेक ॥ महिमा कहूं क्या आसन अचलकी, आखोंकी दृष्टि स्वामी नासोंपे डारी । कैसी० ॥ १ ॥ जिनका स्वभाव वीतरागी कहावै, करुणा निधान और पर उपकारी। कैसी० ॥२॥ तजके शृंगार वनवासी भये हैं, तौभी रूप आगैं लुभावै पदधारी। कैसी० ॥ ३ ॥ दोऊकर जोक्यां जिनेश्वर खड़ा है, ऐसी योगमुद्रा मुझे दीज्यो जगतारी। कैसी० ॥ ४ ॥

( ५ )

राग रूसूधी।

वंदों जगतपती नामी, तीर्थेश्वर महाराज, वंदों० ॥ टेर ॥ तिनके गर्भतें पहिले, वरसे, रतन वहुभांत। वंदों० ॥ १ ॥ जिनके जनमकी महिमा, गावै सुरगण नार वंदों० ॥ २ ॥ जिनजी जगतसे उदासी, चौशी न लीना संगका-

१ चाकर ।

ज, वंदों० ॥ ३ ॥ घाति चतुक अरि चूरे, प्रभु ने पायो शिवथान । वंदों० ॥४॥ जगमें भविक प्रतिबोधे, उत्तम पायो शिवथान । वंदों० ॥५॥ अरजी जिनेश्वर येही, मोकों दीज्यो निर्भय थान । वंदों ॥ ६ ॥

( ६ )

श्रीजी तौ आज देखो भाई, जाकी सुंदरताई । श्रीजी० ॥ टेर ॥ कंचन मणिमय अंगतन राजे, पद्मासन छवि अधिकाई ॥ श्रीजी. तीन छत्र शिर ऊपर जिनके, चौसठि चमर ढुरै भाई ॥ श्रीजी० ॥ २ ॥ वृक्ष अशोक शोक सब नाशै, भामंडल छवि अधिकाई ॥ श्रीजी०॥३॥ धुनि जिनवरकी अतिशय गाजे, सुरनर पशुके मन भाई ॥ श्रीजी०॥४॥ पुष्प वृष्टि सुर दुंदुभि बाजे, देख 'जिनेश्वर' रुचि आई॥श्रीजी ॥५॥

( ७ )

राग माड।

म्हेतो थांपर वारीजी जिनंद, चतुरानन

सुख कंद ॥ टेर ॥ सिंहासनपै आप विराजे, पद्मासन महाराज । तीन छत्र शिर मोहने, चौसंठि चमर समाज ॥ म्हेतो० ॥ १ ॥ तेजवंत देही दिपै, कोटिक सूर लजंत । ज्ञान दर्श सुख वीर्यको, पाया नाही अंत ॥ म्हेतो० ॥ २ ॥ जिनकी वानी सुख मई, सब जग आनँद कंद । सहित जिनेश्वर देवको, सेवत लहै अनंद ॥ म्हेतो० ॥ ३ ॥

( ८ )

सुनिये सुपारस अरज हमारी । सुनिये॥टेर॥ लख चौरासी जोन फिर्यौ मै, पायो दुख अधिकारी । सुनिये ॥ १ ॥ बडे पुण्यतें नर भव पायो, शरन गही अब थारी । सुनिये० ॥२॥ रत्नत्रय निधि निजकी दीजै, कीजे विधि निरवारी । सुनिये० ॥ ३ ॥ अधम उधारक देव जिनेश्वर, आज हमारी वारी । सुनिये० ॥ ४ ॥

( ९ )

मेरी जिनवर सुनो पुकार, वसुविध-कर्म

जलानेवाले । मेरी० ॥ टेर ॥ मेरे कर्म अनादी साथ, मेरी संपति इनके हाथ, मोको देते दुख दिन रात, वैरी धर्म भुलानेवाले ॥ मेरी०॥१॥ मैंने कीना नहीं विगार, तौभी देते दुःख अपार, इनका ऐसा है इखत्यार नाहक दुःख दिखाने वाले मेरी० ॥ २ ॥ मैंतो सदा अकेलो एक, मेरे दुश्मन कर्म अनेक, सबकैं दुख देनेकी टेक, कातिल ये कहलानेवाले । मेरी० ॥ ॥ ३ ॥ देवैं गाफिल करके मार, लेते वैर कुगतिमें डार, मोकों भवदधिसे कर पार, जिनेश्वर धर्म चलाने वाले ॥ मेरी० ॥ ४ ॥

( १० )

राग अमरसिहके ख्यालकी ।

जगनायक स्वामी, छाई तिहुं जगमें, कीरति आपकी । जगनायक ॥टेक॥ निज लक्ष्मी के मालिक हो जी, थे म्हाका सिरदार । सुरगईस आदिक नमैस जी, सीस महीतलधार॥अधम उधारन कारन प्रभुजी, आप लियो अवतार।

रेखता—येजी म्हेतौ थांकी सरन सहाईजी, म्हा-
का प्रभुजीवो राज । म्हेंतौ थांकूं जान्या सरन
सहाईजी, यह मेरे मनभाई, क्योंदेर लगाई, छाई
तिहुं जगमें कीरति आपकी, जगनायक ॥१॥
छायकदर्शन ज्ञान विराजो, सुख अनंत बलधार ।
दोष अठारहरहित प्रभूजी, गुण छ्यालीस
प्रकार ॥ असनविना तन जोति विराजे, कोट
सुरज उनहार । रेखता—एजी थांकी वानी सब
हितदाई है, म्हारे प्रभुजीवो राज, थारा सबको
आप हितदाई हो, अनअक्षररूप कहाई, यथा-
रथ देत बताई । छाई० ॥२॥ श्रीगृहमें हरि आ-
सन सोहै, तापर कमल विराजै । पदमासन है
पदमपैसजी, अंतरीक्ष महाराजे ॥ तीन छत्र
शिरऊपर जिनके, चौसठ चमर समाजे । रे-
खता—येजी देख्यो थांको प्रभाचक्र सुखदाई
हो, म्हांका प्रभुजी हो राज, येजी प्रभुदेख्यो प्र-
भाचक्र सुखदाई हो, जन्म निज सात लखाई,
हृदयमें अतिसुखदाई । छाई० ॥ ३ ॥ तीनलो-

-कके नायक स्वामी, तुम्हीं हो जगमें सार। जिनने सरन लियो तुमपदको, ते पहुंचे भवपार॥ सरन 'जिनेश्वरने' लीनो है,मोको जगतैं त्यार। रेखता—येजी म्हाने दीज्यो आपतनी ठकुराई, हो, म्हाका प्रभुजी वो राज, प्रभुम्हाने दीज्यो आपतनी ठकुराई, वडी जगमै वरदाई, यहीमैं आस लगाई। छाई तिहूं जगमें कीरति आपकी। जगनायक स्वामी० ॥ ४ ॥

( ११ )

लावनी रंगत लंगडी।

करुनानिधि जगत्यार शिरोमनि, मेरी एक पुकार सुनो। मो अनाथकी नाथ यह, अरजी तो इकवार सुनो। टेर॥ या जगमें विधि वैरीने चिर,काल हमैं दुख दीना है। गाफिल करके, सुहितकर ज्ञान सबैं हरलीना है॥ मोह जहरकी लहरि विषै मैं, निज परको नाहिं चीना है। परमें फसिके चतुरगति, भ्रमण बहुतसा कीना है॥ तारन तरन विरद जगजाहर, तुम सबके

सिरदार सुनो, मो अनाथकी ॥१॥ कबहूं नरक पशू गति माहीं, छेदन भेदन सहना है। क्षुधा त्रिषांकी वेदना, तहां निरंतर सहना है॥ इष्ट वियोग रोग दारिद दुख, भारसहित मग वहना है। मानुषगतिमें वहुतविधि, दुखदावानल दहना है॥ सुरगतिमें भी मानसीक दुख, कहत न पाऊं पार सुनो, मो अनाथकी॥२॥जिस कारणसे परवश होकर, वहुविध मैं दुखपाता हूं। ईश्वर होके दीन बन, जगमें रंक कहाता हूं॥ उस कारणको दूर करो मैं, सजातीय कहलाता हूं। हे प्रभु तेरे चरनको, वार वार शिर नाता हूं॥ सरनागत प्रतिपाल सरन मैं, आपकी अधम उधार सुनो। मो अनाथकी ॥ ३ ॥ मेरो पद त्रैलोक्यपती स्वाधीन निरंतर ज्ञाता है। आप बताया अक्षयानंत सदा सुखसाता है। जिस कारणसे मिलै स्वपद वह, हेतु तुम्हीसे पाता है। हे जगतारी जगतपति तुमसम और न दाता है॥ कृपासिंधु अरहंत ' जिनेश्वर ' करो

यही उपकार सुनो । मो अनाथकी ॥ ४ ॥

( १२ )

पद राग ख्याल में ।

श्रीचंद्रनाथजी हूज्यो महाई, या कलिकाल में ॥ टेर ॥ या संसार असार वनीमें, कोई न सरन सहाई । मिथ्या विषय कषाय कुलिंगी, जगजनको भरमाई ॥ ज्ञान महानिधि लूट निर्दयी, देय कुगति पहुंचाई । दोहा—

सुखदाई संसारमें, जिनवर धर्म महान ।
ताके मारगको कुधी, रोके दुष्ट अजान ॥

जान वश इनके प्रभुजी, हूज्यो सहाई या कलिकालमें ॥ १ ॥ धर्ममूल परधान तासको, होन न देत मिथ्यात । विषय कषाय महाविष राच्यो, जप तप नाहिं सुहात ॥ फिर उपदेश मिल्यो तब खोटो, तब कैसी कुशलात । दोहा-

हित अनहित समझ्यो नहीं, करै कर्म अघखान ॥
फंस्यो कुमतिके फंदमें, अंध भये विज्ञान ॥

आपकी वानि न पाई ॥ हूज्यो० ॥ २ ॥ चिंता

प्राणि यह नरभव पायो, उत्तम कुल अवतार। श्री जिनदेव दिगंबर गुरुजी, धर्मदयामय सार ऐसो जोग पाय मत भूलै, अपनो काज सम्हार दोहा—तजि मिथ्या मद मोहको, विषय कषाय निवार। भजि अरहंत महंतको, चरन अनूपम सार, यही मैं आस लगाई ॥ हूज्यो० ॥ ३ ॥ तत्त्वारथ सरधान सम्हारों, जिनशासन अनु-सार। पूजा दान दया चित धारो, निज पर-भेद विचार ॥ ऐसे काज कियेतैं जगमें, सफल गृहस्थाचार। दोहा—शील शिरोमन सर्वथा, पालो मन वचकाय। यही जिनेश्वर देवकी, आज्ञा है हितदाय, प्रहूं मैं शिव सुखदाई ॥ हू०

( १३ )

पद।

चंद्रनाथदुति चंद्रवरन पगमैं शशिराजैजी नाथपगमैं शशिराजैजी, चंद्र० ॥ टेर ॥ षट नव मास जनमसे पहिले, बहु बरसे नग पंचवरन। पितामात सबै आनंद कारन सुरदुंदुभि बाजैजी

चंद्र० ॥१॥ जन्म वियोग सचीपति कीनो, फिर तप लीनो तारन तरन । वरसानल यो प्रभु निरावरन, रविकी छवि लाजैजी । चंद्र० ॥२॥ इंद्र हुकुमतैं धनददेवने, रच्यो गगनमें समोसरन । प्रभुराजत हैं तहां निराभरन, धुनिदिव्य सु गाजैजी । चंद्र० ॥ ३ ॥ जिनवानी सबको सुखदानी, जिन जीवनने लिया सरन । सब दूर हुवा तिन जनममरन, शिवमाहीं विराजैजी । चंद्र० ॥४॥ पंचकल्यानक नायक प्रभुजी, एक जिनेश्वर राखीसरन । जिनभाव गहूं करि त्याग परन जगसाजै समाजैजी ॥ चंद्र० ॥ ५ ॥

( १४ )

पद लावनकी रांग मैं ।

श्रीचंद्र प्रभु महाराज अरज सुनलीजै । शुभ ज्ञान दान सुखसाज आज मोहि दीजै॥ जिनराज विलंब अब नेक न लावोजी । सुनो हमारी अरज जगतपति हिरदै आवोजी॥१॥ या जगमें भ्रमत अनादि वहुत दुख पायो ।

गति चार चुंरासी लाख जोनि भ्रम आयो ॥ महाराज मिला नहिं सरन सहाईजी। परम दिगंवर सुगुरु कृपासे निजनिधि पाईजी ॥ श्रीचंद्रप्रभु० ॥ २ ॥ तुम चरन कमलको देव इंद्रशिर नावैं। गुणगावैं निरखि मुनिराज पार नहिं पावैं ॥ महाराज विरद सुन आशि लगाईजी। करुनानिधि जगत्यार शिरोमणि प्रतिपाल जगतमें होउ सहाईजी।

सैर—अरहंत संत महंत सबमें यही जाहिर बात है। जगमाहिं और न देव दूजा, तुम समान लखात है॥ जगपाल दीनदयाल तुम ही, अरज यह सुन लीजिये। संसार सागर पार मोकों करि कृपा जस लीजिये॥

चौपाई—अधम उधारक नाम तुम्हारो।
जगजीवन के काज सुधारो॥
ध्यान धरै तस विपति निवारो।
गणधरने यों विरद उचार्यो॥

चलत—त्रैलोकपती अब लाज हमारी राखो।

मेरो पूरो कर वृपकाज धर्मको साख्रो ॥
महाराज जिनेश्वर विरद कहावोजी-सु० ।

(१५)

पद नीहालदेकी चालमं ।

सुमरन करले पारस देवको दिव शिव सुख दातार ॥ सुमरन० ॥ टेर ॥ पहिले भवमें स्वामी मरुभूति छा जी कोई ब्राह्मन कुल अवतार । कमठ अरीने शिल शिर मारियो जी कोई भयो वली गजसार । सुमरन० ॥ १ ॥ अणुव्रत पाले गजने भावसूंजी प्रभु सुरग बारमे जाय । तहां से चय कर स्वामी नरभव लियो जी २ कोई विद्याधर नरराय ॥ सुमरन० ॥ २ ॥ तपकरि पहुंचे सोलम दिवविपै जी कोई फिर चक्री पद पाय । मुनिव्रत धरकर स्वामी मेरे वन वसे जी २ कोई हते भीलने आय ॥ सुमरन० ॥ ३ ॥ मध्यम ग्रीवक स्वामी मेरे सुर भयो जी कोई फिर आनंद कुमार । षोडश कारन भाई प्रभु भावना जी २ कोई, प्राणत दिवपति सार । सुमरन० ।४।

तहां से चयकर स्वामी मेरे अवतर्यो जी कोई, पारसनाथ महान । पंच कल्यानक महिमा सुर करी जी २ प्रभु धरे जिनेश्वर ध्यान । सुम० ॥

( १६ )

पद—

अनुपम छवि अविकारी नाथकी, आलीजा जिनराज प्रभु की आछवि लागै प्यारी राजी कोई अनुपम छवि अविकारी,नाथकी निरखन दो असवारी ॥ टेर ॥ पद्मासन दृढ मुद्रा जिन की, दृष्टि नासिका धारी । वीतरागता भावविराजे, भविजनको हितकारी ॥ नाथकी० ॥१॥ वस्त्राभरन विना तन सोहै, वालकवत अविकारी । विषय अनंग महाविषनाशन मंत्रसिखावन हारी । नाथकी० ॥२॥ यदपि ज्ञानविन दिखित ज्ञानको, कारन है अनिवारी । वचन विना मुनि जगजीवनको, दे शिक्षा हितकारी ॥ नाथकी० ॥ ३ ॥ आगम अरु अनुमान सिद्ध यो, जिनप्रतिमा भवतारी । कृत्याकृत्य

जिनेश्वरकी छवि, पूजो शिवमगचारी ।
नाथकी० ॥ ४ ॥

( १७ )

घड़ी दो घडी मंदिरजीमें जाया करो, २ एजी जायाकरो, जी मन लगाया करो, घडी ॥ टेर ॥ सब दिन घर धंदामें खोया, कछु तो धर्ममें विताया करो । घड़ी० ॥ १ ॥ पूजा सुनकर शास्त्र भी सुणल्यो, आध घडी तो जाप में विताया करो ॥ घडी० २ ॥ कहत जिनेश्वर ' सुन भविप्रानी, जावत मनको लगाया करो । घडी० ॥

( १८ )

लावनी राग भैरवी में ।

अपना भाव उर धरना प्यारेजी, अपना भाव सुखदान वडा । अपना भाव जिनने उर धारा, तिन पाया शिव थान वडा ॥ टेर ॥ नर भव पाय चतुर मति चूकै, यह मोका हितदान वडा । जो करना सो निजहित करलै, चिंता-

मन सम जान बडा । अपना० ॥ १ ॥ धन जो-
बन बादलकी छाया, को इसमें ललचाता है।
इन ही भावनतैं सुन प्यारे, कर्म अरी भरमाता
है ॥ अपना० ॥२॥ तन संबंध करम की छाया,
इन सबसें तू न्यारा है । ये जड प्रगट अचे-
तन प्यारे, तू सब जानन हारा है ॥ अपना० ॥
॥ ३ ॥ राग द्वेष मद मोह छोडकैं, वीतराग
परनाम किया। पूरन ब्रह्म परम पद पावन, आ-
प 'जिनेश्वर' सरन लिया ॥ अपना० ॥ ४ ॥

( १९ )

राग भैरवी।

मिथ्या भाव मत रखना प्यारे जी, मिथ्या
भाव दुखदानी बडा। मिथ्या भाव तजके नि-
ज हेरो, सो ज्ञाता जग जान बडा ॥ टेर ॥
निज परकों विन जाने जगत जन, कर्म जाल
में आते हैं। धन दौलत विषयनिमें फसिके,
बहुत भांति दुख पाते हैं ॥ मिथ्या० ॥ १ ॥
विषयनसैं हट जा रे सुधी नर, इनका विष चढ

जावैगा। त्रिसना लहर जहर का मास्या फिर गाफिल हो जावैगा ॥ मिथ्या ॥ २ ॥ तन धन यौवन जीवन वनिता, इनको जो अपनावैगा। ये तेरे नहिं संग चलैंगे, फिर पाछें पछतावैगा। मिथ्या० ॥ ३ ॥ तज परभाव स्वभाव सम्हारे, वीतराग पद ध्यावैगा । कहत 'जिनेश्वर' यह जगवासी, तव शिवमंदिर पावैगा ॥ मिथ्या भाव मत० ॥ ४ ॥

( २० )

सुमती हित करनी सुखदाय, जरा उर अंतर वस ज्याये, अंतर वस जाये हिरदै वस ज्याये हित करनी सुखदाय, जरा उर अंतर वस ज्याये ॥ टेरी ॥ दया छिमा तेरी वहन कहीजै सत्य शीलभाई थाग ये ॥ सुमती० ॥ १ ॥ समकित तौ थारो तातजी, भवि जीवन को प्यारी ये ॥ सुमति० ॥२॥ श्रीजिनदेव चरन अनुरागी, शिव कामिनकी प्यारी ये ॥ सुमती० ॥३॥

संत सुधीजन तोहि अराधैं, मान जिनेश्वर वानी ये ॥ सुमती० ॥ ४ ॥

( २१ )

राग मरैठी ।

जगतकी झूठी सब माया, अरे नर चेत वक्त पाया ॥ टेर ॥ कंचनवरनी कामिनी, जोवनमें भर पूर। अंतर दृष्टि निहारते, मलमूरत मशहूर ॥ कुधी नर इन में ललचाया, अरे नर० १ लछमी तौ चंचल बडी, विजलीके उनहार। याके फंदेतैं वचोजी, अपनी करो सम्हार । विवेकी मानुष भव पाया, अरे नर चेत वक्त पाया २ स्वच्छसुगंध लगायके, करके सब सिंगार । तिहं तनमें तू रति करै जी. सो शरीर है छार, वृथा क्यों इनमें ललचाया, अरे नर चेत वक्तपाया।३। तन धन ममता छांडिकें, रागदोष निरवार । शिवमारग पग धारियेजी, धर्म जिनेश्वर सार ॥ सुगुरुने ऐसें बतलाया, अरे नर चेत व क्तपाया ४

( २२ )

सुगुरु कृपाकर यों समझावैं, इन विषयनमें मत ना राचै, ये चहुंगति भरमावैं सुगुरु०॥टेक॥ सपरस वस गज, मीन रसन वश, कंटककंठाछेदावे। नासावस अलि कमलबंधमें, परत महादुख पावे, सुगुरु० ॥ १ ॥ चक्षुविषयवम दीपशिखामें, अंग पतंग तपावे। करनविषयवश हिरन अरनमें, नाहक प्रान गमावै, सुगुरु० ॥ २ ॥ विषयनके वश हिंसा चोरी, झूंट कुशील कहावे। परधन-परकामिनिके लोभी, परिग्रहमें चित लावे, सुगुरु० ॥ ३ ॥ इनहीके वश मिथ्या परनति, करत महादुख पावे। याहीतैं जगमाही 'जिनेश्वर' मिथ्याविषय छुडावे, सुगुरु० ॥ ४ ॥

( २३ )

कर्म वडा देखो भाई, जाकी चंचलताई ॥ कर्म वडा० ॥ टेक ॥ राजा छिनमें रंक होत हैं, भिक्षुक पावै प्रभुताई। जाकी ॥ १ ॥ निर्धन धनिक होय, सुख पावै, धनविन होय निधनताई

॥ जाकी ॥ २ ॥ शत्रु मित्र सम सब सुख देवे मित्र करै फिर कुटिलाई जाकी० ॥ ३ ॥ सुत त्रिय बंधवको निजजानै, सो निज अहित करै भाई ॥ जाकी ॥ ४ ॥ सुख दुखमैं परदोष न दीजै, यही 'जिनेश्वर' बतलाई ॥ जाकी० ॥ ५ ॥

(२४)

तुम त्यागो जी अनादी भूल, चतुर सुवि-चारो तौ सही ॥ टेक ॥ मोह भरमतमभूल, अ-नादी तोडौ तौ सही । एजी निजहितकारक ज्ञान, दृगन सुधारो तौ सही ॥ तुम ॥ १ ॥ जी-वादिक सततत्त्व स्वरूप विचारो तौ सही । निश्चय अरु व्यवहार, सुरुचि उर धारो तौ सही ॥ तुम० ॥ २ ॥ विषयमहाविष त्याग सु, संजम धारो तौ सही । चहुंगति दुखका वीज, सुबंध-विदारो तौ सही ॥ तुम० ॥ ३ ॥ ॥ सब विभा-व परत्यागि, सुभाव विचारो तौ सही । परमा-तम पदपाय, जिनेश्वर तारो तौ सही ॥ तुम० ४

( २५ )

पद रंगरेखता।

आपके हिरदै सदा, सुविचार करना चाहिये। जापकर निजरूपका, निरधार करना चाहिये ॥ टेक ॥ त्यागकैं परकी झलक, निज भावको परखा करो। चाढि वीतरागता शिखर, फिर ना उतरना चाहिये। आपके० ॥ १ ॥ धारिकैं समता सहज, तज दीजिये ममता सबै। लोभविषयनिकेविषैं, नाहक ना गिरना चाहिये॥ आपके ॥ २ ॥ जान निजपरको सजन, कल्यानकी सूरत यही। संसार सागरपार यों, जल्दीसे तिरना चाहिये ॥ आपके०॥ ३ ॥ श्रद्धा समझकर आचरन, जिनराजका मारग यही। हितदाय जिनेश्वर धर्मको, इख्त्यार करना चाहिये। आपके० ॥ ४ ॥

( २६ )

रेखता।

जिनधर्म रत्नपायके, स्वकाज ना किया।

नरजन्मपायके वृथा, गमाय क्यों दिया ॥टेर॥ अरहंतदेव सेव सर्व सुक्खकी मही। तजके कुधी कुदेवकी, अराधना गही॥ पण अक्ष तो पर-तच्छ, स्वच्छ ज्ञानको हरैं। इनमें रचे कुजीव जे, कुजोनिमें परैं॥ जिनधर्मरत्न० ॥ १ ॥ पर संगके परसंगतैं, परसंग ही किया। तजके सु-धास्वरूपको, जलक्षार ही पिया॥ जिनधर्म-मद मोह काम लोभकी, झकोरमें परो। तज इनको ये वैरी बडे, लखि दूरसे डरो जिनधर्म० ॥ २ ॥ हिरदै प्रतीतकीजिये, सुदेव धर्मकी। तजि रागदोप मोह,औ कुटेव कर्मकी॥ साजि वीतरागभाव जो, स्वभाव आपना। विधिवंध फंदके निकंद, भाव आपना॥ जिनधर्मरत्न० ॥३॥ मनका मता निरोध, वोध सोध लीजिये। तजि पुण्य पाप बीज, आप खोज कीजिये॥ सधर्मका यह भेव श्री, गुरुदेवने कहा। शिव-वासकाज यों, 'जिनेशदासने' गहा॥ जिनध-र्मरत्न० ॥ ४ ॥

( २७ )

पद ख्याल ।

श्रावक कुलपायो,अपनो क्यों इष्ट गमायो धर्म-को । टेर श्रावकधर्मपंचपरमेष्टी इष्ट कह्यो भगवान। जिनको नाम धाम विनजाने,मूरख करत गुमा-नजी॥श्रावक०॥१॥अपने २ इष्टदेवको, सब ही पूजे ध्यावे । इष्ट तज्यो सो नर या जगमें, पापी ही कहलावैजी ॥ श्रावक० ॥ २ ॥ परमसुगुरु-उपदेश शास्त्रको, हिरदैमैं नहिं आयो । बाल-ख्याल मदमोहजालमें, योंही जन्म गुमायोजी॥ श्रावक० ॥३॥ मूलविना फल फूल लगैना, यों सतगुरु समझावै । जो वेश्याका पूत होय सो, बाप किसै बतलावैजी ॥ श्रावक० ॥४॥ शीलव-ती पतिवरता नारी,निजपतिहीको चावै । कैसो ही दुख क्यों न परै वह, व्रत अपनों न गमा-वैजी ॥ श्रावक०॥ ५ ॥ ये दृष्टांत जानकर अ-पने, मनमैं आप विचारो । रागद्वेषको त्याग जिनेश्वर आज्ञा उरमें धारोजी ॥ श्रावक०॥६॥

( २८ )

रेखता ।

रतनत्रयधर्महितकारी, सुगुरुने यों बताया है। मिलै ना दाव फिर ऐसा, वक्त यह हाथ आया है ॥टेर॥ सुकुलनरजन्म मुस्किल है, नहीं हर-वार पाता है । सुसंगतिज्ञान उत्तम क्या हमेशा हाथ आता है । रतन० ॥१॥ सुभगजिनदेवका पाना, सुरुचि जिनधर्मकी आना । स्वपराविज्ञा-न मनमाना, मिलै यह मुसकिलसे वाना । रतन० ॥ २ ॥ अरे नर दाव यह पाया, कहा विषय-निमैं ललचाया । सुधारस छोड विष खाया, र-तन तजि कांच मनभाया ॥ रतन० ॥ ३ ॥ ग-माओ वक्त मत प्यारे, तजो ये भोग अहितकारे जिनेश्वर वचन ये धारे, जिन्होंको मिलते सुख-सारे ॥ रतन० ॥ ४ ॥

( २९ )

पद ख्याल ।

सुनियो भविलोको करमनकी गति बांकड़ी

सुनियो० ॥टेर॥ तीरथ ईश जगतपति स्वामी रिषभदेव महाराज । एकवर्ष आहार न मिलियो, भयो असंभव काजजी, सुनियो ॥१॥ अर्ककीर्त्ति परनारी कारन, जयकुमारसे हार । कीरति खोय दई सब छिनमें, कर्म उदय अनिवारजी, सुनियो० ॥२॥ विधिवस रावन हरी जानकी, अपजस भयो अपार । पांडव पांच भेषधर निकले, तब पायो आहारजी । सुनियो०॥३॥ छपनकोडि यदुवंश कहावे, हरित्रिखंड पतिसार । जनमत मंगल भयो न जिनके, मरे न रोवनहारजी सुनियो० ॥ ४ ॥ कर्मनकी गति रुके न काहू, तीनलोक मंझार । एक जिनेश्वर भक्ति जगतमें, शिवसुखदायक सारजी सुनियो

( ३० )

श्रीगुरु यों समझाई जिया राग बड़ो दुखदाई ॥टेर॥ राग उदय परवस्तुग्रहणकर, जानो नितहितदाई । अथिर पदारथको थिर मानै, मोह गहल अधिकाई ॥ जिया० ॥ १ ॥ हिंसा-

दिकबहुपाप अरंभे, जनम जनम दुखदाई। निज पद तीन लोकके स्वामी, सो दीनो विसराई जिया०॥ २॥ रागसचिक्कनसों चित लागे, कर्मधूल अधिकाई। राग अग्नि निजगुण उपवनको, छिनमें देत जराई॥ जिया०॥ ३॥ वीतराग जिनने क्या कीनो, समझो हिरदै भाई। तज संकल्प विकल्प जिनेश्वर, वीतराग पद ध्याई जिया०॥ ४॥

( ३१ )

पद मराठी।

कल्पतरु जिनवरवृष छाया, धार भवि जीवन सुखछाया॥ टेर॥ जगत दुखसागर अतिभारी, जगत बहु देखत भयकारी॥ रहे जे जग में अविचारी, सहें वे दुख भी अतिभारी॥ दोहा, जगदुखदुखिया जीवको, दुखसे लेइ निकार। सुखी करै सो जगतमें, 'धर्म' कहावै सार, दिगंबरगुरुने इम गाया, धार०॥ १॥

देवगुरु आगम सरधानो, धर्मका मूल यही

जानो। शास्त्रमें लच्छन पहिचानो, परखकर इनको उरमानो॥ दोहा-विना परख गुरुदेवकी, करै अज्ञानी सेव। मदमातो हट पच्छमें, नहिं जानै गुरुदेव॥ रतन चिंतामनि कर आया धार०॥ २॥

दोष अष्टादश परिहारी, अनूपम गुण अनंत धारी॥ दिगंबर रत्नत्रय धारी, परमगुरु सबको हितकारी॥ दोहा--जिनवर आगममें कह्यो, यह सरधा उरधार। श्रावक मुनिवरधर्मको, सफल करै यह सार॥ इसीसे दिवशिव सुख-पाया, धार०॥ ३॥

सुभग यह जिनवर दरसाया, सुफलकर श्रीगुरु दिखलाया॥ मुझे अरि जिसको तरसाया, स्वबल यह हिरदैं दरसाया॥ दोहा-धन्य गुरु परमार्थी, निजपरहितकरतार। असरन सरन सहायहो, या कलिकालमझार, जिनेश्वर धर्म सुगुरु भाया धार०॥ ४॥

पद।

दुर्लभ पायो जिनवर धरमको करले अपनो काज। टेर, मानुष भवमें मनमेरा आयके, नहिं देख्यो निजरूप। तिन जीवनको मनमेरा जीवनो, विनपानीको कूप ॥ दुर्लभ० ॥ १ ॥ एक कंचन अर मनमेरा कामनी, जगजाहर वटमार। इनके वस जग मनमेरा डूबियो, अपनी कीज्यो सम्हार। दुर्लभ० ॥२॥ विषयवासना मनमेरा त्यागके, करले तत्त्व विचार। जिनवर वच उर मनमेरा धारकेंजी, निजको कीज्यो विचार ॥ दुर्लभ० ॥ पांचो इंद्री मनमेरा वस करोजी, पालो संजम संत। रागद्वेषको मनमेरा परिहरोजी, यही जिनेश्वर पंथ ॥ दुर्लभ० ॥ ४ ॥

( ३३ )

त्रिदशपंथउरधार चतुर नर यों वरनो जिनवानीजी ॥ त्रिदश०॥टेर॥ तीर्थंकरकी भक्ति हृदयधरि, परिगहविनगुरुज्ञानीजी। जिनमत-

गुरु जिनचारिसंघकी, भक्ति करो सुखदानीजी ॥ त्रिदश० ॥१॥ पंचपाप निजबलसम त्यागो, चारकषायदवानीजी। सज्जनता गुणवानजी-वकी. संगतिसाहित वखानीजी॥त्रिदश० २ इंद्रि-यदमनशक्तिसमकीजो, दानचार वरदानीजी। यथाशक्तिसम्यकतप करना, द्वादशभावसुध्या-नीजी ॥ त्रिदश० ॥ ३ ॥ भवतनभोगविराग-भाव यों, तेरहपंथप्रमानीजी। मुक्तावलीशास्त्रमें[1] शशिप्रभु[2], कही जिनेश्वरवानीजी ॥ त्रिदश०४

( ३४ )

पद रागख्याल।

मति वृथा गमावै, सहसा नहि पावै, मानुष जन्मको ॥टेर॥ मानुषजन्म निरोगी काया, उ-रविवेक चतुराई। धर्म अधर्म पिछान किये विन, काम कछु नहिं आईजी ॥ मति वृथा० ॥ १ ॥ जिनवर धर्म दिगंबर ताकों, यदि उर धरनोंभाई। तौ आगम अनुसार देवगुरु, तत्त्वपरखि सुखदा-

---

१ सूक्तमुक्तावलीग्रंथमें। २ सोनप्रम।

ईजी ॥ मति वृथा ॥२॥ खान पान अरु विषय-भोगके, सेवनकी चतुराई। कूकर शूकर पशुभी करते, यामें कहा बडाईजी ॥ मतिवृथा० ॥३॥ क्षणभंगुरविषयनिके काजें, निर्भय पाप कमावे। है नर करत कहा अनरथ यह, शुभशिक्षा न सुहावैं जी ॥ मतिवृथा० ॥ ४ ॥
बहुविधिपाप करत हरखावै, सब कुटंबविल-खावै। दुखपावै जब नरकधरामैं, कोईय न काम जु आवैजी ॥ मतिवृथा० ॥ ५ ॥ मानुषदेह रतनसम पाकर, जो निजहित करवावै। कहत 'जिनेश्वर' सो नरभवके, धारनको फल पावैजी॥

( ३५ )

लावनी रंगत लंगडी।

परनारीसे दूररहो परनारी नागनकारी है। नरकनिशानी धर्मका पंथ विगारनहारी है॥टेर॥
अत्रसुगंध फुलेल लगाकर, अंग दिखावन हारी है। बडे ढोंगसे मुफतका माल उडावन हारी है। ऊपर चमक दमक अतिसुंदर मोह जगावनहारी

है। दीपशिखासी अधमनर, जंतु जरानेवारी है ॥ संत जिनोंसे दूर रहैं सो हजार पुरुषकी नारी है। नरकानि० ॥१॥ ऊपर कोमल वचन सुधासम बोल बोल मन ललचावै। उर अंत-रमें किसीकी कभी नहीं खातिर ल्यावे ॥ मूरख मोही सरवथा मन, लगा लगाकर बतलावै। धरम गुमावन पावै इष्ट दुखी हो बिललावै ॥ परनारीकी प्रीत सबनको दाग लगानेवारी है। नरकनि० ॥ २ ॥ चितवन बकसम फनी विष-धरी विषकी बुझीकटारी है। लागै उसको उसी दम करै कुगतिकी त्यारी है ॥ लगै दूरसे चोट ओट फिर खून सुखावनहारी है। घायल होकै हरीहर ब्रह्मा बुद्धि बिसारी है ॥ कठिन कटारी अजसकी फांसी सज्जनने परिहारी है॥ नरक० ॥ ३ ॥ परवस दीनवनै जस खोवै ज्ञान ध्यान धननाहि रहै। जोवन छीजै बुद्धिबल रूपचतुर पन नाहि रहै ॥ धीरज साहस अरु उदारता सुविदधर्म मन नाहि रहै। एक शील विन सुगु-

ण सब दूर सूरपन नाहि रहै ॥ कहै जिनेश्वरदा-
स सरवथा दुखसमुद्र परनारी है। नरकनि० ४

( ३६ )

वनमें नगन तन राजे, योगीश्वर महाराज
वनमें० ॥ १टेर॥ इक तो दिगंवर स्वामी, दूजो
कोई नहि साथ, । वनमें० ॥ १ ॥ पांचों महा-
व्रत धारी, परीसह जीते वहु भांति । वनमें०
॥ २ ॥ जिनने अतन मन मार्यो, हिरदै धार्यो
वैराग । वनमें० ॥ ३ ॥ रजनी भयानक कारी,
विचरै व्यंतर वैताल । वनमें० ॥ ४ ॥ बरसै वि-
कट घनमाला, दमके दामनि चालै वाय । वन-
में० ॥५॥ सरदी कपिन मद गालै, थरहर कांपै
सब गात । वनमें० ॥ ६ ॥ रविकी किरण सर
सोखै, गिरपै ठाड़े मुनिराज । वनमें० ॥ ७ ॥
जिनके चरनकी सेवा, देवे शिवसुख साज ।
वनमें० ॥ ८ ॥ अरजी जिनेश्वर, येही, प्रभुजी
राखो मेरी लाज । वनमें० ॥ ९ ॥

( ३७ )

रगत लंगड़ी।

परम वीतरागी गृहत्यागी शिवभागी निरग्रंथ महान।अचरजकारी जिन्होंकी,परनति जानै सकल जहांन।टेर।त्रस थावर हिंसा तज दीनी, झूठ वचन नहिं भाखत हैं। परिग्रहत्यागी दया पट काय तनी उरराखत हैं॥ चौरी तजैं महादुखदायी, पर सनेह सब राखत हैं। निजमें रचि के गुरुजी, ब्रह्मचर्य रस चाखत हैं॥ रेखता— निराखिके पग धरैं भूपर, मधुर हितमित वच कहै। अहार शुद्ध समाल वृष उप करन निरखि धरै गहैं॥ मलमूत्र हू निर्जंतु भुवि, एकांतमैं छेपै सही। पट वंदनादिक अवशि कारज, नितकरें वृषकी मही॥ पंचेंद्रियको वशमें राखै, तिनको वर्णन सुनो सुजान। अचरज०॥ १॥

सुंदररूप सची रति रमनी, वा राक्षसनी भेष कराल। सुखदुखकारी और जे, जड़ चेतनके

भेष कराल ॥ कोमल कठिन दुगंध सुगंधित, रसनीरस वच शुद्ध कराल । समकर जानै न जानै, पर परनतिकों अपनी चाल ॥ सैर-दृष्टि सब दिश छांडकैं, नाशाग्रमैं थिरता लही । मन विषय और कषाय तजि, शुभध्यानमें थिरता गही ॥ दृढ धारि आसन मौन सेती, शुद्ध आतम ध्यावते । तनमन वचन वश करै गुरु वे, सुरग शिवसुख पावते ॥ एकबार भोजन आदिक अठ, वीस मूलगुणधारक जान । अ-चरज० ॥ २ ॥

सूखजाय सरवरपर रीता, पंथी पथतज दीना है । ग्रीषमरितुमें चीलनिज, अंडनको तज दीना है ॥ जलचारी अरु पवन अहारी, नभ-चारी इम कीना है । तज निज थलकों जि-न्होंने, सघन वनाश्रय लीना है ॥ सैर-ऐसी विकट गरमी विषै गिर, गुफा वनकों छोडकैं । शिलशैल शृंग समाधि धारचो आस जीकी

छोडकैं ॥ जिनके सुभानन भान सनमुख भासमाननभान है । वहु ज्योति मूरतधार धारी इन समानन आन है ॥ एकवार जिनके दर्शनतैं सभी, निकट आवै कल्यान । अचरज कारी० ॥३॥

घन गरजै लरजै अतिदादुर, मोर पपैया शोर करैं । चपला चमकै पवनचालै जलधारा जोर परै ॥ तरुतल निवसै सुगुरु साहसी, अचल अंग तपघोर करै । शीतकालमैं नीरतट, तपसी तप अति घोर करै ॥ सैर-वहुरिद्धि सिद्धि स्वभावथिरता, ज्ञाननिधि या भवविषै । पावै तपस्वी सुर असुरपति, मोक्षपद परभव विषै ॥ ऐसे गुरुकी भक्तिकरि वहु, नमूं मनवच कायसौं । गुरुदेव मोहि छुडाय दीज्यो, मोहरूपी वायसौं ॥ कुगुरु त्यागकर सेव सुगुरुकी, धरै जिनेश्वर धर्म महान । अचरज कारी० ॥ ४ ॥

( ३८ )

सुगुरुस्वरूपलावनी रंगतलंगडी।

कहूं चिन्ह कछु सुनो सुगुरुके, जिनशासन अनुसारी है। भ्रमतमहारी जिन्होंके, वचन स्वपर हितकारी है ॥ टेर ॥ प्रथमादिगंबर भेष गुरूका, वस्त्राभूषण त्याग दिया। शांतस्वरूपी अथिर-जग, जान मान वैराग लिया ॥ बनमें वसै कसै तनमनकूं, निजनिधिमय सद्ध्यान दिया। परिग्रहत्यागी अनुपम, ज्ञानसुधा हित जानपिया ॥ वदनचंद्रछवि अनुपम जिननें, वीतरागता धारी है। भ्रमतम० ॥ १ ॥ असनहेत नाहि जात बुलाये, ना कछु संग सवारी है। भेट न चाहैं असन कछु, मिलै मधुर वा खारी है ॥ रागद्वेष नहिं करै कदाचित्, जिनआज्ञा चितधारी है। भोजनकरके गुरू कर, जाय गमन तिहवारी है ॥ यंत्र मंत्र नहिं करै कुकिरिया, निरतिचार ब्रह्मचारी है। भ्रमतम० ॥ २ ॥ त्रणकंचन अरिमित्र बराबर, जीवनमरनसमानागिनै। सहै प-

रीपह धीरजी, समताको परधानगिनै ॥ काम-क्रोधमदमोह लोभके,परिकरकों दुखदान गिनै। विषयवासना महा अप-वित्र पापकीखान गिनै॥ लोकरीतपरिहरी जिन्होंने, वृत्ति अलौकिक धारी है। भ्रमतम० ॥ ३ ॥ तारन तरन जैनके गुरुको, यह स्वरूप वाहिरजारी। उरअंतरमें शुद्धरतन, त्रयनिधिकों सहचारी ॥ ये ही मरनस-हाय जगतमें, शिवमगमें ये सहचारी। अचर-जकारी जिन्होंकी परनाति है जगतैं न्यारी ॥ गुरुपदकमल 'जिनेश्वर' उरमें वास करो अनिवारी है। भ्रमतम० ॥ ४ ॥

( ३९ )

लावनी रंगतलंगडी।

या कलिकाल महानिशिमें जिन, वचनचंद्रिका जारी है। परिग्रहत्यागी गुरुकी, सेवा शिवहितकारी है ॥ टेर ॥ कुंदकुंद प्रमुखादि-गुरू उप-कार करगये सब जगका। शास्त्रव-

नाके सर्व वरताव, दिखागये शिवमगका। सताजिनधर्म लहै सो ज्ञाता, सरनगहै जो इस मगका। ज्ञानचक्षुमें लखै सब, सत्यझूंठ हरम जहबका॥ ज्ञानविरागविषै सुनि भाई, शिवलक्ष्मी सहकारी है। परिग्रह० ॥ १ ॥ विद्याके अभ्यासविना नहिं, ज्ञानवृद्धिकों पाता है। विना ज्ञानके नहीं परमागम मर्म लखाता है। परमागम विन धर्म न जानै, धर्मविना दुख पाता है। इसकारनसे एक यह, विद्या शिवसुखदाता है॥ हाय हाय विद्याके दुस्मन, आज धर्मअधिकारी हैं॥ परिग्रह० ॥२॥ विषयवासना फसिंकें जिनने धर्मकर्मको लोपादिया। लोभउदयसे जिन्होंने. सतमारगको गोप किया॥ धर्मकल्पतरुकाटि आपने, पापवृक्षकों रोपादिया। धिक धिक इनकों सत्य कह, नेवालोंपर कोप किया॥ कहा कहों मैं विषयचाहवस, बनगये आप भिखारी हैं। परिग्रह० ॥ ३ ॥ तजकर ज्ञानविरागआप बंन, गयेविषयवश अज्ञानी। खानपानमें ऐस

इस्तरमें सबके अगवानी ॥ धर्ममूल अरहंतदेव निर, ग्रंथ गुरू हैं जिनवानी। इनके संगमें महाशठ, भैरूंकी पूजा ठानी ॥ अर्ज जिनेश्वरदेव सुनो, यह मोहकर्म अनिवारी है ॥ परिगह० ४

( ७५ )

लावनी रंगतलंगड़ी।

( कुगुरुस्वरूप )

सम्यग्ज्ञान विना जगमें, पहिचाननवाला कोई नहीं। जैनधर्मका यथावत, जाननवाला कोई नहीं, ॥ टेर ॥ पहिले ज्ञान आपकों चहिये, विना ज्ञान क्या समझेंगे। सत्यझूंठका कहो वे, निरनय कैसैं करलेंगे ॥ विन निर्धार किये जिनमतके, उर प्रतीत क्या धरलैंगे। विन प्रतीतके क्रियाकरि, भवदधि कैसैं तिरलेंगे ॥ दुर्लभजान ज्ञान होना यह, माननवाला कोई नहीं। जैनधर्मका० ॥ १ ॥ गुरुका काम ज्ञानदेना वा, धर्मदेशना करना है। आप धर्ममें लीन हो, कर्म अरीको हरना है ॥ हा कलिकालप्रभाव आज

गुरु, जगहं जगहं लड मरना है। अधर्म करके पापका भार आप सिरधरना है। विन विद्या-बल इन बातोंका, छाननवाला कोई नहीं। जैनधर्मको० ॥ २ ॥ ज्ञानदानके बदलेमें श्रुत, पाठन पठन निवार दिया। पढै जो कोई उसे, पुस्तक देना इनकार किया ॥ जहां जिनागमकी चर्चा तहां विन कारन तकरार किया। भोले भाले जहां देखे तहं, रहनेका इकत्यार किया। शिवमगमें ऐसे ठगको गुरु, माननवाला कोई नहीं। जैनधर्मको० ॥ ३ ॥ धर्मदेशनाके बदले लौकीक कथाको करते हैं। बडे ढोंगसे आप निज विषय विथाको हरते हैं। सरस मनोहर असनवसन सय,-नासन नहीं विसरते हैं। बडे सूर हैं जगतसे, जरा नहीं वे डरते हैं ॥ वचन जिनेश्वर सत्य तदपि पहिचाननवाला कोई नहीं, जैनधर्मको० ॥ ४ ॥

( ४१ )

लावनी रंगत लंगड़ी।

काम क्रोध वशि होय कुधी जिन,-मतकैं दाग लगाते हैं। धिक् धिक् इनकों धर्म विन, जिनधर्मी कहलाते हैं ॥टेर॥ जिनवर वचन उथापि आपने, वाग जाल विस्तार दिया। सूत्र विचारी आपका, संग सहित निस्तार किया॥ ब्रह्मचर्य व्रत धारि बहुरि, शृंगार गलेका हार किया। खान पानमें पुष्ट रस, भोजनको इकत्यार किया॥ इत्र फुलेल सुगंध लगाकर, काम दाह उपजाते हैं। धिक्० ॥ १ ॥ सुनो महाशय अर्ज हमारी, जरा गौर करकें देखो। मृग तृणचारी जिन्होंके, सुख समाजको नहिं लेखो॥ शीत उष्ण दुख सहें निरंतर, अरु संकित मनमें पेखो। वे भी वनमें मृगी लखि, कामक्रियामें रत देखो ॥ कहो आप फिर किस कारनसे, निरविकार रह जाते हैं॥ धिकधिक्० ॥ २ ॥ भोजन जाय करावै बहुविधि, शुद्ध करावै से-

चकमों। यह चालाकी धन्य यह, पाप भयो सब सेवकसों ॥ पहिले अगन पाप देकरके, पीछे धन ले सेवकसों। तुष्ट होयकर वारता, करै राग युत सेवकसों॥ तुष्ट सुफल यह रुष्ट भये क्या जाने क्या दे जाते हैं॥ धिक धिक० ॥ ३ ॥ चौमासाके प्रथम दिवस धरि. भेष दिगंवर पद-मासन्। जिन प्रतिमाके सामनै, करै प्रतिज्ञा-वसनासन् ॥ सेवकगनसे यों कहलावे, वक्त न-हीं सुन गुरु भापन् । परिग्रह धारो तजो यह, योग्यप्रतिज्ञाको आमन। इम सुन वचन तत-क्षन उठकर, फिर भेपी वन जाते हैं॥ धिक धिक ॥ ४ ॥ खूब अनुग्रह किया आपने, से-वक गन सब तार दिया । जरा देरमें अधो-गति, वंधनका हकदार किया ॥ समझो सेव-कगन हिरदैमैं, क्या अनुपम उपहार दिया ॥ ज्ञान चक्षुको खोलकर, देखो क्या उपकार कि-या ॥ मोहनींदके जोर अज्ञजन, योंही काल गमाते हैं। धिक धिक० ॥५॥ आंख खोलकर

देखो आगम, भगवतने क्या किया बयान् । देव धर्म गुरु इन्होंका, सत्स्वरूप लीजो पहचान् ॥ इनको जान यथावत निजपर, तत्त्वनको किज्यो सरधान् । यह जिनमतको मूल है, याको पहिले निश्चयजान् ॥ या विन भेप निरर्थक सवही भव वनमें भटकाते हैं ॥ धिक्धिक० ॥ ६ ॥

( ४२ )

लावनी राग लगड़ी ।

देखो कालप्रभाव आजपा,—खंडजगतमें छाया है । जैनधर्मकों नीच लोगोंने, दाग लगाया है ॥ टेर ॥ जगजाहर अरहंत देव निरग्रंथ गुरू हैं जिनमतके । दयाधर्म है जिनागम, सत्यवचन हैं जिनमतके ॥ इनहीको जानै मानै श्रद्धान, करै जन जिनमतके । शिवा इन्होंके औरको, कभी न मानें जिनमतके ॥ इनकों तजि अज्ञानोंने मनकल्पित ठाठ वनाया है । जैनधर्मको० ॥१॥ कोई वने कलयुगीअचारज,

आरजधर्म विसार दिया। महंत होकें धर्मके, कामोंको इखत्यार किया। पहिले नगन दिगंबर होके, फिर वस्त्रादिक भार लिया। परिग्रह तजके वनिज, व्योपार व्याजका कार किया॥ देखो हीन आचरन करके, भगतनकों सरमाया है। जैनधर्मको० ॥२॥ केई भोले जीव जिन्होंने, जिनशासनको नाहिं जाना। जो कुछ जैसी किसीने, कही उसीको सच माना॥ खान पान लडनेमें चातुर, पढनेमें मन अलसाना। क्रोधी मानी लोभवश, लिया कृपणताका बाना॥ हाय हाय ऐसे जीवोंने, नरभव वृथा गुमाया है। जैनधर्मको० ॥ ३ ॥ कोई उद्यमहीन दीन नर, पेट काज भये ब्रह्मचारी। खानपानकों मिलातब, धर्यो भेष स्वेच्छाधारी॥ पूछे पर वो जवाब दें हम, इतने ही दिन ब्रतधारी। धिकाधिक उनको धर्म,-पद छोडभये जे गृहचारी॥ सुनिये देव जिनेश्वर अरजी, यह कलियुगकी छाया है। जैनधर्म को० ॥ ४ ॥

## ( ४३ )

लावनी गृहस्थाचार्यकी रंगत लंगड़ी ।

उत्तम नर जिनमतकों धारें, सो श्रावक कहलाते हैं । कोई उन्हीमैं गृहस्था,-चारजका पद पाते हैं ॥ टेर ॥ गर्भादिक संस्कार क्रिया जे, सभी करानेका अधिकार । जिनगृह प्रतिमा प्रतिष्ठा, तथा धर्मके काम अपार ॥ व्रत विधानकी सभी प्रक्रिया, अथवा प्रायश्चित्त परचार । गृहधर्मीको करावे, इसभव परभव हित व्यवहार ॥ धर्म क्रियाकों करते करते, जो उत्तम कहलाते हैं । कोई उन्हींमें० ॥ १ ॥ किरिया विशेष गृहस्थाचारज, करते जिनका सुनो बयान् । जाके सुनते समझलें, सर्व हालकों चतुर अयान् ॥ दीक्षान्वय अवतार क्रियामें, ग्रहन करै जिनमत सुखदान । चौथा दरजा त्यागकर, कुदेवपूजन निंद्य महान् ॥ श्रीअरहंतदेवके पूजक, सद्गृहस्थ कहलाते हैं । कोई उन्हींमें० । ॥ २ ॥ वृतका चिन्ह जनेऊधारैं, नवमी क्रिया-

विषै वृतवान् ।।फिर क्रम क्रमसे पंद्रमी, क्रिया लहै उपनीत महान् ।। प्रायश्चित्त शास्त्रके ज्ञाता, जानत नयनिक्षेप प्रमान् । सो वडभागी गृहस्थाचारज जानों सम्यक्वान् ।। सभी गृहस्थी उनको मानै, जो श्रावक कहलाते हैं । कोई उन्ही में० ।। ३ ।। श्रीमत आदि पुराण शास्त्रमें, उन्तालिसमा है अधिकार । दीक्षान्वयकी क्रिया उपनीतविषै देखो निरधार ।। गुण लक्षण पहिचान सुधीजन, यथायोग्य करते व्यवहार । विना परखके धर्मधन, खोवै मूरख जीव अपार ।। यही जिनेश्वरकी आज्ञा है, जो श्रावक उरलाते हैं, कोई उन्ही में० ।। ४ ।।

( ४४ )

लावनी रंगतलंगडी ।

कर्म उदय अनिवार जगतमें, सभी जीव भरमाये हैं । कर्म उदयकी चालमें, वडे पुरुष भी आये हैं ।।टेर।। युगके आदि तीर्थंकरस्वामी, छै महिना विन असन रहे । कर्मउदयसे सुपा-

रस, पारस जिन उपसर्ग लहे ॥ कर्मउदय च-
क्रीपदपायो, भरतेश्वर वहु सुक्ख लहे । कर्म
उदयसे उन्होंने, मानभंगके दुःख सहे ॥ रेखता-
जो आदिकुलका तिलक क्षत्री, अर्ककीर्ति कु-
मार है । भरतेशका बेटा बडा युव, राजनृप-
शिरदार है ॥ परनारिकाज अकाज सो, क्या
करै अपजसकार है । यह कर्मकी करतव्यता,
जगमैं वडी अनिवार है ॥ वहुतवार जगजीव-
कर्मने, वहुतभांति भटकाये हैं ॥ कर्मउदयकी०
॥ १ ॥ कर्म उदय दशरथराजाने, रघुवरसे सु-
तपाये थे । कर्म उदयसे उन्हींको, वनके वास
कराये थे ॥ लछमनके रावनकी शक्तीलगी राम
घवराये थे । कर्म उदयसे पवनसुत, नारि वि-
सल्या ल्याये थे ॥ रेखता—फांसी लगाके वन-
विषैं वनमालि जिसकी चाहमैं । मरती वही
लछमन तहां, विधियोग पहुंचे राहमैं ॥ संवू-
कने वारहवरष, साधा खडग दुखपायके । वि-
धिजोगसों सहजे लयो, लछमनने हाथवढा-

यके ॥ तिह असिसे संबूक कुमरनैं, वनमें प्रान गमाये हैं ॥ कर्म उदयकी० ॥ २ ॥ कर्म उदय पांडव बहुभटके, अपने नाम छिपाये थे । देश देशमें उन्होंने, रूप अनेक बनाये थे ॥ बारह बरस सहे दुखभारी, भोजन भी नहि पाये थे । कर्मयोगसे विप्र बनपाल ग्वाल कहलाये थे ॥ रेखता—विधियोग नंगे पगचली; वह विकटवन की बाटमें । सतवंति रानी द्रौपदी, मालिन बनी वैराट में ॥ अति विकट रनकर राजपायो, आपनो हरिसाथमें। विधियोग फिर भी देशछूटयो, कर्म नहिं निज हाथमें ॥ क्या कोई तदबीर करै नर, पदवीधर घबराये हैं ॥ कर्मउदयको० ॥ ३ ॥ नगर शेठ कोटीध्वज घरमें, जन्म हुआ सो शेठ कुमार । कर्म उदयसे विसन में, खोया सारा द्रव्य गमार ॥ कर्म उदय पर देश भ्रमनमें रहा न बाकी दुःख लगार । कर्म उदयसे उसीने, फिर भी पाया निधिभंडार ॥ रेखता—कर्म ही सों राज पावै, कर्म ताबैदार है ।

कर्महीसों रंक बनकर, फिर बनै सिरदार है ॥ जितनी अवस्था कर्म कृत, सो नहीं निज इक-त्यार है। वह धन्य है संसार में जो, करै आप सम्हार हैं ॥ कर्म जीत पद लहै 'जिनेश्वर' वे जगदीश कहाये हैं ॥ कर्म उदयकी० ॥ ४ ॥

( ४५ )

जोलौं कर्म जोग जीवन के तौलौं निज न लखाता है। कर्म जोगका नाश कर, अचल रिद्धि नर पाता है ॥ टेर ॥

दौड़ रेखता—कर्म ही जगमें बडो सव, कर्म ही के हाथ है। कर्म ही ऊंचा करै फिर, कर्म नीचा पात है ॥ वहुराजकाज समाज सं-पति, कर्म हीकेसाथ है। वसुकर्म हानि शिवसुख मिले, यह बात जग विख्यात है ॥ कर्मयोगसों जोगमिलै सव, विषयभोग सुरथान महान् । कर्मयोगसों सकलपरि, वार सुरासुर मानै आन्॥ कर्मयोग प्यारी देवीका, किया अचानक प्राण-पयान् । कर्मयोगसें दूसरी, देवी आई उसी स-

मान् ॥ रेखता—वहुरिद्ध दूजे देवकी, लखिके भयो दिलगीर है। अथवा हुआ वाहन किसी-का, सदा दुख जंजीर हैं॥ मरते समय छोटे बड़े, सुर ना धरै उरधीर हैं। विधियोग वहांसे आयकैं, पावै कुयोन शरीर है॥ हा धिक धिक इस कर्मयोगको, क्यासे क्या दिखलाता है। कर्मयोगका० ॥ १ ॥

कर्मयोग मानुषगति पाई, मन भाई संपति अरु नार। कर्मयोगसे भोग मनभावन, पाया दिन दो चार॥ कर्मयोगका भोग वदलते, हो वैठे छिनमें लाचार। कर्मयोगसे वही फिर, भये मुसाइब नृपदरवार॥ रेखता—गाफिल न होना भ्रात यह, संसार स्वप्न समान है। सुखदुख सभी परवार परिकर, प्रगट निजसे आन है॥ यदि इनमें ललचायगा, पछतायगा चिरकाल है। जग जालमें विधि जालसे, वच काल आप सम्हाल है॥ कर्मयोगमें रचे जिन्होंके दुखकी अंत न आता है। कर्मयोगका० ॥ २ ॥

माता सुता सुता माता तिय तात भ्रात सुत होते हैं। आप पुत्रके पुत्र हो, गूंगे वन सुख जोते हैं॥ आप आपके पुत्र होय, ये कर्मयोग-के गोते हैं। कर्मयोगसे जीव छिन, छिनमें हंसते रोते हैं॥ रेखता—यह मित्र यह संसार भारी, वन भयानक घोर है। बहु कुमत तम अंधियार छाया तासको अति जोर है॥ जहं विषय और कषाय तस्कर, दुखद अतिचहुं ओर हैं। विधि-योग सिंहसमूह जिनको, अति भयानक शोर है। इंद्रजालसे अधिक अथिरपन, कर्मयोग दिख-लाता है। कर्मयोगका० ॥ ३ ॥

कर्मयोगसे सती निरादर, आदर व्यभिचा-रिन पावै। कर्म योगसे चौर ठग शाह, शाह ठग कहलावै॥ कर्मयोगधर्मी दुख पावै, पापी मन-मैं हरपावै। कर्मयोगसे रंकजन, अतुल राज संपति पावै॥ रेखता—याकर्म ही के जोगसों, नारक दुखी बहु रटत है। तिरजंच दुख जाहर सबै, परतच्छ सो सब सहत है॥ इस कर्मके

संयोगसे क्या क्या, न दुख जन लहत हैं। जिन-धर्म धरि निरवार विधिकों, यह जिनेश्वर कह-तहै । तीनलोक तिहुंकाल भावमैं, कर्मयोग दुख दाता है। कर्मयोगक० ॥ ४ ॥

( ४६ )

कोई नहिं सरन सहाय जगतमै भाई। मोही नहिं मानै सुगुरु वचन सुखदाई ॥ टेर ॥ ज्यों नाहर पगतर पर्यो हिरन बिललावै। त्यों जी-व कर्मवश पर्यो, बहुत दुख पावै ॥ या जगत विषै अतिबली, इंद्र नश जावै। हरिहर ब्रह्माको काल ग्रास करजावै ॥ तब और कौन अब होगा सरन सहाई, मोही० ॥१॥ जब कर्म उदय दुख होय जीव विललावै। परिवार अनेक प्रकार जतन करवावै ॥ विन पुण्य उदयके दुखका अंत न आवै। सब जंत्र मंत्र औषधी, विफल होजा-वै ॥ कोई राख सकै नहिं जीव देह तज जाई। मोही० ॥ २ ॥ जब आवै आयुको अंत मरन तब होवै। मूरख मनमें पछताय बहुतसा रोवै॥

विपरीत काम कर बीज पापका बोवै । सब देवी देव मनाय धर्म निज खोवै ॥ नहिं कभी किसीने किसीकी आयु बढाई । मोही० ॥ ३॥ ग्रह व्यंतर भैरव जक्ष जोगिनी माता । मिथ्यातभाव वश निश दिन तिन्हे मनाता । नहिं पावे मनका इष्ट दुखी बिललाता । तौभी नाहिं छोड़े निंद्य टेव दुखदाता ॥ जगमाहिं जिनेश्वर सरन सदा सुखदाई । मोही० ॥ ४ ॥

( ५७ )

पद मराठी ।

करमवश चारों गतिजावै, जीव कोई संग नहीं आवै ॥ टेर ॥ अकेलो सुरगौमें जावै, अकेलो नरक धरा धावै । अकेलो गर्भ माहिं आवै, अकेलो मनुप जन्म पावै । दोहा—बूढा होवै आपही, थरहरकांपै देह । बलबीरज जासों रहैसजी, घरके तजें सनेह, गेह तज द्वारामें ल्यावै, जीव कोई संग नहीं आवै । कर्म० ॥१॥

उदयवस रोग जवै आवै, बहुत फिर मनमें प-छतावै । एक छन थिरता नहिं पावै, कुटुंवसब बैठो विललावै ।। दोहा-चलै दवाई एक ना, वडे बडे उपचार । कोई काम नहिं आवई सजी, गये वैद्य सवहार, विपतिमैं बहुविधि विललावै । जावै कोई० ।। २ ।। अकेलो मरन दुःख पावै, अकेलो दूजी गतिजावै । अकेलो पापविषै धावै, अकेलो धर्मी कहलावै ।। दोहा-पाप उदयनार-कि बनै,दुखी रहै दिन रात । पुण्य उदयसव सं-पदा सजी, लहै अकेलो भ्रात ।। सुखी सुरगति मैं कहलावै जीव कोई० ।। ३ ।। अकेलो मिथ्या परिहारै, अकेलो समकित उरधारै । अकेलो कर्म सभी टारै, अकेलो अक्षय पदधारै । दोहा-यही अकेलो जगत में, यही आतमा राम । कही जिनेश्वर देवने सजी, गई सुबुधि गुणधाम, स्व-हित निज संपाति दरसावै । जीवको० ।। ४ ।।

——:-०-:——

( ४८ )

लावनी रंगत लंगड़ी।

कर्मजोग संपति मिल बिछुरे, फिर छिनमें मिलजाती है। कर्मयोगको अथिरपन जान, जान घवराती है ॥ टेक ॥ कर्म जोग जोगी वन वन वन, नगन चरन मग धरते हैं। कर्मयोगसे वही फिर इंद्रासनसुखभरते हैं॥ कर्म जोग हाथी असवारी, छत्र शीशपर फिरते हैं। कर्म जोगसे वही शिर, वोझ धार मग गिरते हैं ॥ सैर--कर्मके परसंगसे परसंग, सब मिलजात हैं। सुख दुख अनेकनवार जगमें, मिलन थिर न रहात है ॥ सुत मित्र धन परवार प्यारी, नार अथिर लखात है। फिर मित्र विधिवश क्यों पड्यो, तू क्या यहां कुशलात है॥ सुंदर तन जोवनकी आभा, दामनि ज्यों दरसाती है। कर्मयोगको० ॥ १ ॥ कर्म योगसें रानी अंजना पतिवियोग दुख पाया था। कर्म योगसें वरस बाईस नृपति नहिं आया था॥ कर्म जोग परदेशी पतिसें, मिल-

करके सुख पाया था। कर्म जोगसे सासने, वन् वन् वास कराया था ॥ सैर—हनुमंतसे बल वीरकी माता, महादुख पावती। कैसैं विकट बन छोडकैं, मामाके घर वह आवती ॥ क्या मात कोई गिरे सुतको[1], जीवता फिर पावती। या कर्मकी करतव्यता, कछु ख्यालमें नहिं आवती ॥ कर आई संपति नासि जावै, दुर्लभनिधि मिलजाती है। कर्मजोगकों ॥ २ ॥ कर्म जोगसे सीता रानी वन वनमें भटकानी थी। कर्म जोगसे दशानन हितकी बात न मानी थी ॥ अर्जुनको प्राणोंसे प्यारी, सती द्रोपदी रानी थी। कर्म जोगसे वही फिरे, नृपके[2] हाथ हरानी थी॥ सैर-भारी समंदरपार रानी, रहत अरिके सदनमैं। अति बिकट सरकी चोटभारी, लगी ताके वदनमैं ॥ विधिजोग तहं भी पतिसमागम, मिल्यो हरिके जतनमैं। बहुकाल शील सम्हाल

१ विमानसे परवतपर गिरे हुये पुत्रको २ धातृ खंडकेराजा पद्मोत्तरके द्वारा।

राख्यो, साहमी दुखपतनमे ॥ वडी वडी तदवीर जगतमें सभी, विफल हो जाती हैं । कर्मयोग॰ को ॥३॥ कर्मजोग श्रीकृष्णजन्मका नाहीं मंगलाचार हुआ । कर्मजोगसे त्रिखंडी हरिप्रताप विस्तार हुआ ॥ कर्मजोगसे तृषित वनीमें भ्रातवान पगपार हुआ । कर्म जोगसे मरनके, समय न रोवनहार हुआ ॥ मैर-या कर्मकी करतव्यता, भाई वडी दुर्लक्ष हे ॥ जानी परे नहिं जगतमैं, जिनराजके परतक्ष हे ॥ त्यागो कुसंगति विषय, और कषाय जो जगदक्ष हे । पावो सभी सुख संपदा जो, जगतके परतक्ष हे ॥ कर्म जोगतैं सिद्धि 'जिनेश्वर' जाकरके फिर आती है । कर्मजोगको॰ ॥ ४ ॥

( ४९ )

लावनी रंगतलंगडी ।

मोह अरीकी सैनामें यह, मनसिज जोधा भारी है । याके वसमें सुरासुर, पशुपंछी नर नारी है ॥ टेर ॥ ज्ञान वजीर कहे आतमसों,

मालिक अरजी सुनलीजै । मनथिरकरके मात, सारदकी मरजी सुन लीजै ॥ वृप जननी गुरु देव वचन तज, यह खुदगरजी नहिं कीजै । जिनसे पाया जगतसुख, तिनसौं डरजी नहिं कीजै ॥ रेखता–धनधानरूप अनूपनारी, पुत्र अरु परिवार है । सुखभ्पार संपति मिलै क्यों, करो यह निरधार है ॥ गाफिल हो खुदगरजी करते, तिनने वात विगारी है ॥ याके० ॥ १॥ क्योंकर जुग सुख मिल्यो हमैं, यह खबर नहीं सुन ज्ञानवजीर । देवगुरुनका माति सारद, का क्या क्या हुकम नजीर ॥ खुद् गरजी हम क्या करते हैं, हवाल सभी समझावो वीर । तुम ही हमारे वडे सत, मित्र कहाओ साहस धीर ॥ रेखता–तुम जिन्हे दुसमन कहो वे,करत हमसे प्यारजी । चिरकाल मेरे संगहै, उनको वडा इकत्यारजी ॥ तुम तो नये वजीर भये, करदीना विग्रह भारी है ॥ याके० ॥ २ ॥ जिनवर वचन मात सारदकी, पहिले जो सेवा कीनी ।

उनकी आज्ञा शीस धरि, सुगुरु वचन परनति कीनी ॥ भक्त जननकी देखा देखी, करि प्रवृत्ति वृषरस भीनी । तिहं प्रभावसे आज तुम, सुरनर पति पदवी लीनी ॥ रेखता—अब उन्होंकी येही आज्ञा, तजो विषय कषाय है । जो सीख तुम मानों नहीं, यह खुद गरजी दुखदाय है ॥ आगैं और सुनो साहब जो, कहो हकीकत सारी है ॥ याके ॥ ३ ॥ दुसमन होकर प्यार करै तौ, दगा जरूर समझलेना । छलबल करके साथ, रहै तौ उसको तज देना ॥ भूल गये इनकी करनी दुख, नरक पशू गतिका रहना । जल कन त्रण को काल तहाँ, भटक भटक कर दुख सहना ॥ रेखता—सीतउष्ण अनेक बाधा, छेद भेद शरीरको । रमनी बिना नरनीच कुलमें, दुख सह्यो असरीरको ॥ सदा संगमें नूतन क्योंकर, तजो कुबुधि अविचारी है । याके ॥४॥ काल अनंत गमाय दियो अब, समय अपूरव पाया है । अब कछु कर ले चेतन, नृप, चिंतामन कर

आया है ॥ आगे जो जिन महावीर तिन बल
कर मोह दबाया है। उसी तरहसों करो पुरुषा-
रथ सो बस आया है ॥ रेखता-आस जीकी छो-
डकैं, असरीर गढ मन मारिये। चित चाह
विषय कषाय पावक, पंचसर गन जारिये ॥ सु-
न सत वचन कर्म अरिगतिमैं, आतम तेज सवा-
री है। याके० ॥ ५ ॥

## ( ५० )

लावनी रंगत लंगडी।

( ब्रह्मचर्य )

श्रीअरहंत भक्ति दृढ हिरदै, बृह्मचर्य
शिरमुकुट गहीर। जिनने धारा भये वे, भव्यसु-
धी भवसागर तीर ॥ टेर ॥ रूप तेज बल क्रांति
कीर्त्ति, विस्तरै काय आरोग्य रहै। पुण्यवंतहो
धीरजी, वचनसिद्ध गतछोभरहै ॥ विकटानन
सम साहस निर्भय, आनन ओज मनोज रहै।
इष्ट संपदा पुण्यवश, विद्यमान हररोज रहै ॥

१ सिंह

या अनुपम व्रतके गुण गावत, थकित भये स-
हसानन वीर ॥ जिनने० ॥ १ ॥ केहरि हरि
शार्दूल सूर गज, क्रूर क्रूरपन तज देवै। तिहपग-
तरकी सीसपर, दुष्ट देवगन रज लेवै ॥ अग्नि
नीर जलनिधि सरवरमम शर शशिरस्मि सुमन-
वेवै । विष अम्रतसम जिन्होंके, चरन कमल सु-
रगन सेवै ॥ भूत पिशाच प्रवल वेरीवल, ग्रह
सामने धरै न धीर ॥ जिनने० ॥ २ ॥ तीक्षण
बुद्धि विचक्षण वानी, अक्षनको वशकर राखे ।
मंदकपायी अनूपम, निजस्वभाव आमिरत चा-
खै ॥ यथायोग्य सव करें क्रिया, गृहवासवसें
विधि अरिनासे । महा विवेकी सुगुरु निर-ग्रंथ
पंथ नित अभिलासै ॥ कंचन उपल नील पय ति-
लमैं, तेलगिनै त्यों ब्रह्म शरीर ॥ जिनने० ॥ ३ ॥
लाभ अलाभविषैं संतोषी, आशा तृसना परि-
हारी । जिन शासनकी तत्त्वरुचि, दृढ प्रतीत
हिरदै धारी ॥ परकामिन देखन सुमरन, अभि-
लाप राग परनति टारी । शिवमगचारी जगत-

मैं, धन्य शील व्रतका धारी ॥ सूरनके शिर सूर जिनेश्वर, शासनसेवक साहसधीर ॥ जिनने- धारा० ॥ ४ ॥

( ५१ )

रंगत लंगडी ।

समरथ सूरसुधी समदरशी, जिनशासन- का बाना है । जिनने लीना उन्होंने, निजपरको पहिचाना है ॥ टेर ॥ जगका ठाठ अथिर सब जानै, छन भंगुरता देखत है । छिन छिन छीजै आयुबल, तदपि हृदय नहिं चेतत है ॥ महा- दाह तृष्णातुर होकर, विषयनिमें सुख पेखत है । शठ अविवेकी दाहमें, देख दवानल से- कत है ॥ यह कायरता तजि करकें, अरहंत पंथ मनमाना है ॥ जिनने० ॥ १ ॥ विधि अरि- जो तनको व्रतधारै, यथाशक्ति निरवाह करै । पुरुषारथसे सुधी नर, कर्म अरीकों दाह करै ॥ जो कदाचि व्रत भंग होय तौ, बहुरि धारि नि-

रवाह करै। यातैं व्रतिक और व्रत, धारनकी उर चाह करै॥ मोहजनित अज्ञान भाव तजि, जिनवर सरन महाना है॥ जिनने०॥ २॥ निज पद योग्य करै सब किरिया, वसि गृहस्थ पदमैं भाई। ग्यारह प्रतिमा धरै जब, प्रगटै निज बल अधिकाई॥ उत्तम दीक्षा धारि सुगुरुके संग रहै वनमैं जाई। धन्य धीरजी मनुषगति, सफल जिन्होंने करपाई॥ शेष परिग्रह तजिकरकें, निरग्रंथ मुनीका बाना है॥जिनने०॥३॥ त्रण कंचन अरु मित्र बराबर, जीवन मरन समान गिनै। सुख दुख कारन मिलै तब, ममताको परधान गिनै॥ अट्ठाईस मूल गुण धारै, धर्म शुक्ल सत् ध्यान गिनै। विषयवासना त्यागकरि, आतमज्ञान प्रमान गिनै॥ स्वरुचि 'जिनेश्वर' पदमाही यह, समदरसीगुन जाना है। जिनने० ॥४॥

५२

ख्यालरंगडी।

स्वरस सुधारस सबसौं न्यारा, वीतरागका

बाना है। या भववनमैं भव्यनको, दायक शिव-
कल्याना है ॥ टेर ॥ कायरका क्या काम धाम,
आराम बामको तज करकैं। वनमें बसना दि-
गंबर, सुगुरुनामको सजकरके ॥ विकटानन-
सम प्रबलसाहसी, निजस्वरूपकी धजि करके।
याकै आगैं मोहअरि छिपै, सर्व दिश भाजि क-
रकैं ॥ दुर्द्धर जोग जान ऐसो यह, वीर पुरुषका
बाना है ॥ या भव० ॥ १ ॥ कोई सूर सुधी स-
मदरशी, विषयनको विषसम पहिचान्। देश-
वृती हो गृहस्थी, महापापका त्यागी जान् ॥
अंतर आगमज्ञान ध्यान बल उद्यमवंतसुधी गुन-
खान्। मोह अरीकों जीतकर, धारै दृढवृत धर्म-
महान् ॥ असिधारावृत ब्रह्मचर्य जग, धीर वी-
रका बाना है ॥ या भव० ॥ २ ॥ मोह अरीके
फंद फसे तन, कसे अष्टविधिबंधनमैं। पराधीन
हो रचे रमनीरस ज्यों अलि गंधनमैं ॥ श्रीजि-
नभक्ति प्रभाव सुधीदृग, ज्ञान लहै जिम अंधनमैं
शांतस्वभावी स्वपर पहिचान सर्व संबंधनमैं ॥

इष्ट अनिष्ट न परमैं मानै, यह सम्यक्ती वाना है। याभव० ॥ ३ ॥ अनागार वनवास करै सो, गारवृती वा सरधानी। शिवमगचारी जिन्हौंकी, आखिरकी शिवरजधानी ॥ जगतवासकी आस तजी है, जिनको प्यारी शिवरानी। जिनने मानी सुधासम, सार जिनेश्वरकी वानी ॥ धर नहिं सकै कुधी कायर यह, महावीरका वाना है। या भव० ॥ ४ ॥

## ५३

रंगतलंगड़ी।

समवसरनकी रचना।

समवसरनकी महिमा लखिकै, सुरपति उर हरषाया है। दर्शन करके भव्यजीवन, ने शिव सुखपाया है ॥ टेर ॥ समवसरनमें बारह जोजन समवसरनकी जान मही। क्रमक्रमसे घटति वीरके, इकजोजन भुवि आन रही ॥ मध्यविषै श्रीमंडप सोहै, चौविंशभाग प्रमाण सही। ताके आगैं भाग दोमाही प्रथम वेदिका कही ॥

सैर गीता—आगैं सभाकी भूमि सोहै वीसभाग प्रमान है। चहुंओर दुइसो भागमाही, फटिक-कोट महान है॥ फिर तूपभूमि महान सोहै, भाग चउचालीस है। आगें कनकमयवेदिका, चहुंभाग नमत सचीस है॥ निरखत नयन तृप्ति नहिं होवे,सहस चक्षु ललचाया है। दर्शन०॥१॥

आगैं कल्पसरोवर पृथिवी, भाग अठासीमें जानो। ताके आगें कनकमय, कोटभाग वसु-परमानो॥ धुजा भूमि है भाग अठासी, आठ भाग वेदी मानो। भाग अठासी अगारी, उप-वन कोट सुधी जानो॥ सैरगीता—आगैं रजत मय कोट तीजो, आठभाग प्रमान है। फिर पुष्पवारी भू अठासी,भागमें सुखदान है॥ वसु-भागमें फिर जान वेदी, छवि सुवर्ण समान है। आगें चवालिस भागमाही, खातिका जलस्थान है॥ पुंडरीक उत्पलनीरजलखि, हंस हृदय हुल-साया है। दर्शन०॥२॥ आगें वेदी चार भा-गमें, सुवरन वरन अनूप लसै। ताके आगें चै-

त्यकी, भूमि चवालिस भाग वसै। धूलीशाल कोट वसु आगैं, चार भाग चहुंओर लसै। पंचरत्नमय अनूपम, समवसरनकी घेरवसै॥ सैर-गीता-सब पांचसौ छिहत्तर, ऊपर भागमाहि प्रमान है। श्री-समवसरन अनूपशोभा, सुखसमान निधान है॥ मंडपविषै जिनवर विराजैं, देत वृपको दान है धनभाग है वह जीव जिनधुनि सुनै जो निज-कान है॥ वसुप्रातिहारजयुत विराजै, सुरप-तिनै सिरनाया है। दर्शन०॥ ३॥चारघातिया कर्म नाश करि, केवलज्ञान सुभाव लहा। जग-जीवनिको जिन्होंने, सुखदायक उपदेश कहा॥ जीवादिक सब तत्त्व प्रकाशे, उत्तम धर्म विशेष महा। शिव सुख पाया जिन्होंने, दृढमनसे वृत्त वेश गहा॥ सैर-गीता--आदिनाथ पुरानमें व-र्णन, किया जिनसेनजी। श्रीसमवसरन विधान मंडल, सर्वकों सुखदेनजी॥ सो ही कह्यो संछे-पसों, वर्णन सुनो यह एनजी। जयवंत वरतों जगजिनेश्वर, देवगुरु जिनसेनजी॥ समवसरन

लक्ष्मीपति दरजा, यही 'जिनेश्वर' चाया है। दर्शन० ॥ ४ ॥

( ५४ )

चौबोले सप्तविसन।

दोहा—सात विसन जगमें बुरे, बुरा इन्हों का संग। जिसके शिर चढजात हैं, केई दिखावत रंग ॥ चौबोला—केई दिखावत रंग संगमें नफा नहीं सुन भाई। अपना तन धन धर्म गुमावै, जगबदनामी छाई॥ तात भ्रात सुतनारी छोडै, मौन लगावै भाई। हाय! हाय किस नीच जीवनें, इनकी चाल चलाई ॥ झड—चालमें सबजग आया, ख्यालमें जन्म गमाया ॥ पाप कर नरक सिधाया, बहुत पीछें पछताया ॥ विसनकी सुनो कहानी, कही जैसे जिनबानी। तज्यो जिन्होंने विसन जिनेश्वर तिनकी शिक्षा मानी ॥१॥ दोहा—जुवा खेलकर जगतमें, हुआ मुफ्त बदनाम। मजा नहीं इस काममें, सजावार वसु जाम ॥ चौबोला—सजावार वसु-

जाम धाम आराम कभी नहिं पाता। फिकरमंद मतिअंध वक्त, पर खानेको नहिं खाता ॥ संग जुआरी कईरंगका, ठग देख घबराता। मारपीट वहुमाल खायकर, तो भी नहीं लजाता ॥ झड-लाज ज्वारीके नाहीं, दया नहिं मनके माहीं। सत्य नहिं कहै कदाही, राज्यका चोर सदाही ॥ पांडुसुत खेल किया था, नारिका दाव दिया था। तजा जिन्होंने जुआ 'जिनेश्वर' तिन सब सुक्ख लिया था ॥ २ ॥ दोहा—श्वांस श्वांसपर खैरको चाहै सकल जिहान। श्वांस नाश कर होत है, मांस महादुख खान ॥ चौबोला—मांस महादुख दानखानकी, वात सुनत घिन आवे। थरहर-कापै काय हाय, पशु दीन वडा घवरावे ॥ वेक-सूर पशुमांस लालची, तनमें छुरी चलावे ॥ वडे निर्दयी जीव जगतमें, आमिस भोजन खावै ॥ झड—भावना हिरदे खोटी, छौंककरि आमिस वोटी। मनुष भी राक्षस जोटी, धरै शिर अघ-की पोटी ॥ मांसका नाम न लेना, अमनके ला-

थक हैना ॥ मांस असनको त्याग 'जिनेश्वर' जगमें कीरति लेना ॥ ३ ॥ दोहा—जितने नशे जहानमें, सभी विनाशैं ज्ञान । तिनमें मदिरा अतिबुरी, सही गमावै प्रान ॥ चौबोला—सही गमावै प्रान ज्ञानका, नाम न रहनै पावै । मदिरा पीके मनुष होशमैं कबहू नाहि रहावै ॥ जननी भगिनी नार न जानै, मदमातुर होजावै । अति वेहोश पडा दुख भुगतै, मूरख प्रान गुमावै ॥ झड—प्रान बहु जीवन खोया, जादवां वंश डबोया । रिषीकों क्रोध जगाया, द्वारका दाह कराया ॥ तुच्छकी कोन कहानी, बडोंकी काल निसानी । यातैं मदिरा त्यागि 'जिनेश्वर' करो धर्म सुखपानी ॥ ४ ॥ दोहा—अपने अपने प्रानकी, सभी मनावै खैर । हाय सिकारी वनविषैं, पशु मारै विनवैर ॥ चौबोला—पशु मारैं विनवैर गैरकी, दया हिये नहि लावै । शीतघाम सब सहै वनीमैं, भोजन भी नहि पावै ॥ नाम भजन हरनाम त्यागकै, मारमार मुख

गावै। कायर क्रूर कुरंग अंगमें, भारी चोट लगावे॥ झड-चोटसें हिरन सताया, दयाका नाम मिटाया। भगेके पीछें धाया, वीरका नाम लजाया॥ मृगीपर हाथ चलाया, वृथा क्षत्री कहलाया। दुर्गति पंथ सिकार त्यागकर यही 'जिनेश्वर' गाया॥ ५॥ दोहा-प्रानोंसें प्यारी गिनें, धनदौलत संसार। याके कारन नरपती, हाथ गहै तलवार॥ चौबोला-हाथ गहै तलवार समरमें, सूरवीर शिर देते। जलसागर निरजाय वणिक, शिर वडी आपदा लेते॥ कठिन कठिन कर लक्ष्मी जोडैं, महै सभी दुख जेते। हाय हाय ताको ठग तस्कर सहज चोर कर लेते॥झड-चोरको राजा मारे, सजा दे देश निकारै। लोग सब ही दुरकारै, वडी वेशरमी धारै। भूलमति चोरी करियो, चोरसंगतिसें डरियो। डरियो जगत मझार 'जिनेश्वर', चोरी कबहु न करियो॥ ६॥ दोहा-नीचनकी संगति रहै, करै नीच सब काम। मूरख मन फासि जात है,

देख ऊजरो चाम ॥ चौबोला—देख ऊजरो चाम दामकी, खातिर धर्म गुमावै। ऊंचनीचको ख्याल करै ना, सबको अंग लगावै ॥ जगको झूंठ जानि गनिकाको, मूरख मन ललचावै ॥ हा धिक धिक ऐसे जीवनकों, गनका संग रहावै॥ झड़-लगै जब गनिका प्यारी, बुद्धि नशिजाय अगारी। क्रोडपति होय भिखारी, कर्म गति टरै न टारी ॥ भूलमति यारी करियो, देह दुरगतिसौं डरियो। ताजि गनिकाको नेह 'जिनेश्वर' धर्मविषै मन धरियो ॥ ७ ॥ दोहा-कुलकलंक दायक सदा, पर कामानिको प्यार। मूरख-मनके हतनको, मृगनैनी तलवार ॥ चौबोला-मृगनैनी तलवार कलेजा आर पार होजावै। द्दग कटाक्ष सर चोट लगै तब, ओट न कोई आवै ॥ ऊपर घाव प्रगट नाहिं दीखै, मन ही मन पछतावै। खान पान गृहवास खासका मजा हाथसे जावै ॥ झड़—जानके प्रान गमावै, भेद काहू न बतावै। जिनेश्वर निशमें निद्रा आवै,

सुपनमैं नारि लखावै ॥ वृथा क्यौंजी ललचावै लिखी विधिने सोइ पावै । लंकपतीसे रंकभये, नर तेरी कौन चलावै ॥ ८ ॥

( ५५ )

अथ पद रा॰ मरहठी ।

दोहा—इस भवकाननकेविषै, आन न सरन सहाय । चतुरानन अरहंनको, ध्यान धरो मन माय ॥ सुताअकंपनरायकी, जिनमंदिरमैं जाय । तातवचन उरधारिकैं, कायोत्सर्ग कराय ॥ छंद-स्वयंवर मंडपका करना, सोमापितु राजकुमर वरना ॥ दुरमपस वचन कान धरना चक्रपति कुमर मानहरना ॥ १ ॥ दोहा—रवीकीर्त्ति कोपित भयो, सुनत अकंपनराय । जयकुमारकों पूछिकैं, दीनो दूत पठाय ॥ आज नरनायकसों लरना, नहीं उनमारग पग धरना । कोप क्या सेवकपर करना ॥ १ ॥ सची समझावत अधिकारी, सुनो नरनारी बुधि धारी । सोम अर नाथ वंश जारी, किये जगदीश्वर हितकारी ॥

दोहा—सवलकरे तुम तातने, मानत हित अधिकाय। न्यायपंथ तुमतैं चलै, यह जानो सतभाय। कुवरजी उर विचार करना, कोप क्या० ॥२॥ न्याय तजि अर्क कीर्ति जगमें, रोप रन अपजसके मगमें। वजे रन पटहादिक वाजे, सजे नरसिंह सूर गाजे॥ दोहा—जयकुमार रनभूमिमैं, सव राजनके माहि। चत्रशूलसों कहत है, यह तुम लायक नाहिं॥ वृथा क्यों निज अकाज करना कोपक्या० ॥ ३ ॥ देश भंडार सैन सारी, नाथकर वंश गगनचारी। आप हो सबके अधिकारी, युद्धमें होय हानि भारी॥ दोहा--समझायो मान्यो नहीं, अर्ककीर्ति सर सांधि। आयो जब जयकुमारपै, लियो पट्टसों बांधि॥ जिनेश्वर भक्ति आप करना॥ कोपक्या० ॥ ४ ॥

( ५६ )

कर्मचरित्र ख्यालकी चालमे।

जगमें अनिवारीजी, विधिकी गति न्यारी

टारी ना टरे। जगमें० ॥ टेर ॥ जिनने विधि अरिनाशी जगतमें, कीनो ज्ञान प्रकाश। तिनके पद उरधार कहूं मैं,करम चरित्र विलास॥ देखो शील धुरंधर नारी, नाम अंजना खास। रेखता-एजी जापै कठिन पडी है, विपदा आनकै। वेटी विद्याधरकी प्यारी, कुंवर पवनंजयकी नारी॥जापैं०मानसरोवर तीर सगाई। भई कुंवरके साथ। व्याहकी होय तयारीजी,विधिकी ॥ १ ॥ पवनंजयके उरमें प्यारी, वसी अंजना सार। भूखप्यास निद्रा नहिं आवे, विन देखे निज नार॥प्रहसितमित्र साथले निशिमे,चाल्यो पवन कुमार। रेखता-बैठो रानीके झरोखे छिपकै राजजी। सूरत देखत ही ललचाया, मानो इंद्रानीकी छाया। बैठो० सुनदामीके वचन हृदयमें सोचै पवनकुमार। नार यह विषधर भारीजी। विधिकीगति ॥२॥ कर्म जोगकर व्याह कुमरने, तजदीनी निजनार। विरह विथादुख माहि अंजना मनमें करत विचार॥ सुगतविन

नहिं जाय हाय यो, कर्म उदय अनिवार।
रेखता--इकदिन मानसरोवर पवनकुमारजी।
निसमें सुनि चकवीकी बानी, जानी विरह-
दुखी निजरानी। इकदिन०॥विरहदुखी पशुकार
हाय मैं बाइस बरस बिताय। दियो दुख ति-
यको भारीजी। विधिकीगति०॥ ३॥ लशकरतैं
छिप चल्यो कवरजी, ले प्रहासितको लार। नभ-
मारगछिनमाहि, आपने पहुंच्यो महल मझार॥
पतिसंयोग अंजनारानी, सुखपायो अनिवार।
रेखता--बाकी रात रही है थोडी जानके, रानी
राजाको समझावै, मोंकों निश्चय गर्भरहावै॥
बाकी०॥ कवरमुद्रिका लेय निसानी, जपै जि-
नेश्वर नाम। हृदयमें अतिसुखकारीजी, वि-
धिकी गति०॥ ४॥

टेर दूसरी—

मोहि आस तुमारीजी, विनती इक म्हारी-
सुन जगदीशजी॥ टेर॥ श्री अरहंत चरन
नित सेवै, शील शिरोमणिनार। सुखमैं रहत

अंजना नारी प्रगट्यो अशुभ विकार ॥ गर्भ चिन्ह लखि केतुमतीने घर से दई निकार। रेखता—पहुंची नगरमहेंद्र घर तातके मन में सोचै जब महराजा, आवै मेरे कुलको लाजा पहुंची० राजा हुकम कर्यो निज सुतको, दीज्यो देश निकार, अंजना कुमति विचारीजी विनती इक० ॥ १ ॥ सखि वसंतमाला संग जावै, वनमें अंजना नार। बैठ सुखासन सोहनहारी, कठिन खुभूमि मझार ॥ नंगे पैर चलै धरती पर, गर्भ भार अधिकार। रेखता—देखे सघन वनीमें श्रीमुनिराजजी, वंदन करके सीस नवाये, जाके वचन सुनत सुख पाये ॥ देखे० ॥ दैवजोग पंचानन[2] घेरी, देव बचाई नार, धार उर धीरज भारीजी, विनती० ॥ २ ॥

महा भयानक विकट वनी में, जनमें श्री हनुमान। सूरजमित्र नृपति वडभागी, आय खड्यो तिहथान ॥ निजपुर लेयगयो नृप अपने

---

१ अंजना की सासूने। २ सिंह।

स्वहित भानजी जान । रेखता-गिरपैं गिर्यो है कुंवर हनुमान जी, माता हा हा कार पुकारी, मनमैं शोच भयो अतिभारी० गिरपै० ॥ परवत शिला चूर करडारी, श्री शैलेश कुमार । मात लखि हरषित भारी जी विनती० ॥ ३ ॥ समर जीत पवनं जय आये, सुनरानी की बात । हिरदै धावलग्यो अतिभारी, मनही मन पछतात ॥ राज्य संपदा सबही छारी, भस्म लगाई गात । रेखता-बनमें भ्रमत अकेलो पवन कुमार जी, सुनकै सूरजामित्र सिधाया, राजापवनं जय ढिग आया बनमें० ॥ रानी अंजना मिल सुखपायो, पवनंजयसुकुमार, जिनेश्वर वृष हितकारी जी, विनती० ॥४॥ (५७)

जिनवर मत पायो, चिंतामणि आयो, प्राणी हाथमैं ॥ जिनवर ॥ टेक ॥

जिनवर धर्म पाय चिंतामणि, मित्र वृथा मति खोवै। समय चूक पिछताना होगा, पीछे कूछ नाहिं होवैजी ॥ जिनवर ॥१॥ धर्म मूल अरहंत देव

है, गुरुनिर्ग्रंथ बतायो। जहां तहां उपदेश सुगुरुको, सब ग्रंथनमें गायोजी ॥ जिनवर० ॥२॥ श्रावकधर्म भेद ग्यारहमें,प्रथम भेद यह जानो। देवशास्त्रगुरुतत्त्वपदारथ, इनकी सरधा आनो जी ॥ जिनवर० ॥ ३ ॥ प्रथमभेद विन सब ही किरिया,निष्फल सुगुरु बताई। विना अंकके विफल विंदु सब,समझो हिरदै भाईजी ॥ जिनवर० ॥ ४ ॥ मूल होय तव डार फूल फल, समय समय पर आवै। विना मूल फल फूल पात नर, कभी न कोई पावैजी ॥ जिनवर० ॥ ५ ॥ इम विचार निरधार करो उर,मित्र रोस मत कीज्यो। यदि तुमको सुख चाह, 'जिनेश्वर' आज्ञा उर धर लीज्योजी ॥ जिनवर० ॥ ६ ॥

( ५८ )

विना सतमारग नहिं तिरना, वडा जग जिनवरका मरना विना० ॥टेर॥ दोहा—उत्तम नरभव पायके,वृथा न खोओ वीर। ऐसो ओसर कठिन है, नाव लगी है तीर ॥ धर्म हित कारज आचरना. भरम उर अंतरका हरना ॥

शरम स्वारथमें नहिं करना, परम परमारथ पगधरना ॥ परख निज परमतकी करना, भूलकर विपति नहीं भरना ॥ दोहा-धर्म धर्म सब ही कहै, मर्म न जानै कोय। उक्ति न जानै ज्ञानकी, मुक्ति कहांतैं होय ॥ बहुरि भव सागरमें परना, विना० ॥ १ ॥ सुता सुत कामिनि अरु काया, अथिर तन जोबन जग माया ॥ वृथा मन इनमैं ललचाया, ज्ञान विन परको अपनाया ॥ कृपाकर गुरुनें समझाया, अरे नर चेत वक्त पाया ॥ दोहा—इस गृहस्थपदके विषैं, गहि श्रावकवृतसार। सेवा जिनवर ब्रह्मकी, चरचा श्रुत अनुसार। कर्म अरि एक देश हरना विना० ॥ २ ॥ कठिन मुनि धर्म खडग धारा, करै भवदुखतैं निरवारा। बढै सिव मगमें थटवारा, खंडै सजिकर्मन हथियारा ॥ लोभ अरु क्रोध मान माया, विघन रज रामरतन पाया ॥ दोहा—सबको राजा मोह है, धरि के हर मन माहि। घात विचारै आपनी सजी, निज पुरमें छिपजाहि ॥ जाबता इसका अब करना,

विना० ॥ ३ ॥ सीस तप कुंजरके चढ़ना, विरागी कवच अंग सजना । पंच पद वीज मंत्र पढना, लोभख सरमारी बढना ॥ ध्यान तलवारि खूव करना, नहीं पग पीछेंको धरना ॥ दोहा—मारि मोह अरि छिनकमै, लीज्यो निजपद राज । करै 'जिनेश्वर' वीनती, दीज्यो यह शिव साज ॥ काज निज मोकों यह करना विना० ॥ ४ ॥

( ५९ )

निजपरकी पहिचान विना जो, तुम निःशंक सो जावोगे । तो निजनिधिकों गमाकर, दीन रंक हो जावोगे ॥ टेर ॥ उत्तम कुल नर जन्म देह नीरोग, कठिन मिलनो प्यारे । सुगुरु देशना धर्म उप, योग कठिन मिलनो प्यारे ॥ द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव हग, जोग कठिन मिलनो प्यारे । भवसागरमें स्वाहित उप, योग कठिन मिलनो प्यारे ॥ भूल चूक कर निज प्रवृत्ति से, फिर पछिं जो जावोगे । तो निज० ॥१॥ सात विसनकी जननी जगमें,

कुमति प्रीति अब तज दीजे। अवसर पाया चेतन, जिनवरशासन भज लीजे॥ श्रीअरहंत देवकी पूजा, सुगुरु सेव निशादिन कीजे। आगम पढना दान तप, संजम गुणमैं मन दीजे ॥ इस अवसर ये तुम्हारे जो इनको खोजावोगे। तौनिज० ॥२॥ कुगुरु कुदेव कुधर्म कुआगम अरु बहुतेरे भेषी हैं। या जगमाही स्वहितकर, जिनमतके सब द्वेषी हैं। विषय भोग अनरथके दाता, घाता स्वबल फनेशी हैं। इनके तृष्णा महा विषकाल कूटतैं वेशी हैं ॥ विधि अरिके वहकाये इनका जरा संग जो पावोगे। तौ निज० ॥ ३ ॥ न्यायपंथ पग धरो धीरजी, करो मती मनमैं शंका। वसु गुन पालौ करै जो, विधि अरिको छिनमैं फंका ॥ सदा विवेकसूर संग राखो, अतिबल सूरन मैं वंका। सुनो धीरजी जीतका, बजै सदा रनमैं डंका॥ ये ही जिनेश्वर आज्ञा इसकों, तजकरकैं जो धावोगे। तौ निज० ॥ ४ ॥

( ६० )

सत्प्रतीत उर धारो चतुर नर, सत्प्रतीतिका काम वडा। सत्प्रतीतिका महातम, अमर, धाम अभिराम वडा॥ टेर॥ सत्प्रतीति विन चारों गतिमें, पावे जीव कलेश कड़ा। सत्प्रतीति-विन सामने रहै, करम दरवेस खड़ा॥ सत्प्रती-ति विन क्रिया फले नहिं, तनमन लहै कलेश वड़ा॥ सत्प्रतीति विन जगतमें, आतम रहै हमेश पड़ा॥ रेखता—सतदेव आगम सुगुरु इनको प्रथमही पहचानिये। इनने बताये तत्त्व-जगमें, यह प्रतीति प्रमानिये॥ प्रत्यक्ष अरु अनुमानमैं, अविरोध आगम जानिये। सतयुक्ति आगम मिलित लच्छन, वही गुरु पहिचानिये॥ सुनो सुधी सतदेवादिकका, कछु स्वरूप हित दाम वडा॥ सत्प्रतीत०॥ १॥ जगत वस्तु जावंत चराचर, तिन्है जानना काम वडा। जिसने जाना वही पर,-मेश्वर जिसका नाम वड़ा॥ जो जैसा है उसको तैसा, जानलिया सुख धाम वडा। हरहालतमैं किसीसे रागदोष

नहिं काम बडा ॥ रेखता—षट द्रव्य गुणपर-
जाय सबका, रूप जाना ज्ञानमें । बाकी रहा
ना देखना, जो वस्तुजात जहांनमैं ॥ पूरन
सुखी दातार सुखके, मग्न अपने ध्यानमैं । नहिं
रागद्वेष कभी किसीमे, अनंत बल भगवानमैं ॥
सत्प्रतीति उर करो देह यह हितकारक वसुजाम
बडा ॥ सत्प्रतीति० ॥ २ ॥ धर्म अधर्म मुक्ति
अरु बंधन, पुण्यपाप फलथान बडा । हित अ-
नहितकी सत्य पहि,चान ज्ञानका दान वडा ॥
द्रव्यदृष्टि नहिं आदि अंत पर,जाय प्रगट पर-
धान बडा । नयप्रमानकों न बतावै यह ही खेद
महान् वडा ॥ रेखता—जो वेद च्यारूं चतुर्मुख
ब्रूह्मा कहैं जगजाहरी । है मर्म उनका कठिन
जगमैं छागई छविबाहरी ॥ कोई मरै इक ना-
मपै, प्रतिबिंब लखि जिम नाहरी । वह मर्म जो
निजमर्म जान्यो, त्याग भ्रमबुधि बाहरी ॥ वेद
भेद पहिचान चतुरकर सत्प्रतीति यहकाम बडा
॥ सत्प्रतीति० ॥३॥ वेद विहित आचरन करन
अरु, करन परनपरिहार बडा । तृण कंचनकों

गिनैं सम, आकिंचन परिवार वडा ॥ सुख दुख जीवन मरनहारहरि शत्रुमित्र परिचार वडा। समकर मानै करै नही, रागदोष दुख कार वडा ॥ रेखता–सब छांडिकें ममता जगतकी, धारती समता महा। तनमन वचनको वश किया, सतमुक्तिका मारग गहा ॥ मदमोह काम कपाय तज, दुखदायनी त्रिसना वहा। नित ज्ञान ध्यान समाधिमाधै, वह सुगरु जगमें कहा ॥ तस गुरुवचन 'जिनेश्वर' उरमें हितदायक आराम वडा० ॥ सत्पतीति० ॥ ४ ॥

( ६१ )

यह संसार असार सर्वथा, क्या इसमें लचाया है। निजहित करले चतुर चिंतामन, नरभव पाया है, निजहित० ॥ टेर ॥ काल अनादि निगोद भ्रम्यो, दुख सह्यो कह्यो नहि जाई है। एक स्वासमें अठारह, जन्ममरन दुखदाई है ॥ भूजलपवन तेज अरु थावर, विकलत्रय गति पाई है। संगी असंगी पशुगति, पचेंद्री अधिकाई है। निजहित० ॥ १ ॥ सिंह सूर पशु

क्रूर कर्मकर, नरकमाहिं फिर परते हैं। छेदन भेदन बहुत विध, दुखदावनाल जरते हैं ॥ तहतैं निकल नीच निर्धन कुल, माहिं जन्म फिर धरते हैं। असन बसनके लोभविन, बहुतभांति दुख भरते हैं ॥ विषय चाहकी दाह दह्यो सुर, गतिमें भी न अघाया है। निजहित० ॥ २ ॥ दुस्मन मित्र मित्र दुस्मन धन,वान दरिद्री रंक फिरै। रंकदरिद्री नृपति हो, गज आरूढ निसंक फिरै ॥ पुत्र मित्र परिवार सभी निज,स्वारथ कारन संग करै। सुखमें साथी विपतिमें, पतिपत्नी नहिं संग करै ॥ मतिभूलै लखि कामिनि काया, सब असार जगमाया है। निजहित० ॥ ३ ॥ विषय विषमविष नार नाहरसम धनको धूलिसमान गिनै। देह जीवको वंदिग्रह, बंधन सम पहिचान गिनै॥ या संसार महावनमें गाफिल, रहना दुखदान गिने। धन है जिनको जिनेश्वर, सासन अमृतपान गिनै ॥ सुरनर खगपति आस तजो जिन, भजो सुगुरु इम गाथा है। निजहित० ॥ ४ ॥